एडिटोरियल

(संग्रह)

फरवरी भाग-2
2021

दृष्टि, 641, प्रथम तल, डॉ. मुखर्जी नगर, दिल्ली-110009
फोन: 8750187501
ई-मेल: online@groupdrishti.com

अनुक्रम

संवैधानिक/प्रशासनिक घटनाक्रम **5**

- विकास वित्तीय संस्थान 5
- केंद्रीय बजट और स्वास्थ्य 6
- असहमति का अधिकार 9
- केंद्रशासित प्रदेशों के संरचनात्मक मुद्दे 10
- दसवीं अनुसूची की समीक्षा की आवश्यकता 12

आर्थिक घटनाक्रम **14**

- असंगठित क्षेत्र के लिये श्रम संहिता 14

अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रम **16**

- भारत-रूस संबंधों की नई शुरुआत 16
- भारत-चीन सैन्य वापसी समझौता 17
- इज़राइल-फिलिस्तीन संघर्ष और टू स्टेट सॉल्यूशन 19

नोट :

पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण **21**

➢ प्रकृति आधारित समाधान 21

सामाजिक न्याय **24**

➢ एम.जे. अकबर बनाम प्रिया रमानी मामला 24

नोट :

नोट :

संवैधानिक/प्रशासनिक घटनाक्रम

विकास वित्तीय संस्थान

संदर्भ:

केंद्रीय बजट 2021 से यह संकेत मिलता है कि भारत की आर्थिक विकास दर को स्थिर रखने के लिये केंद्र सरकार दीर्घकालिक अवसंरचना निर्माण पर विशेष ज़ोर दे रही है। इस योजना के साथ सरकार ने विकास वित्तीय संस्थान (DFI) की स्थापना पर पुन: विचार करने का प्रस्ताव किया है।

इसके अतिरिक्त डीएफआई का विचार वर्तमान में और भी तर्कसंगत लगता है क्योंकि हाल ही में केंद्र सरकार ने अपनी महत्त्वाकांक्षी राष्ट्रीय अवसंरचना पाइपलाइन के लिये लगभग 100 लाख करोड़ रुपए जुटाने की परिकल्पना की है। बैंकों के बढ़ते एनपीए संकट के संदर्भ में भी डीएफआई का विचार सही प्रतीत होता है।

हालाँकि कई अर्थशास्त्रियों के अनुसार, भारत को डीएफआई के प्रयोग को जारी रखना चाहिये, हालाँकि पूर्व में इन संस्थानों को सार्वभौमिक बैंकों रूपांतरित कर दिया गया था, उदाहरणत:-ICICI और IDBI बैंक।

विकास वित्तीय संस्थान और पृष्ठभूमि:

- विकास वित्तीय संस्थान लंबी अवधि तक चलने वाले पूंजी-गहन निवेशों के लिये दीर्घकालिक और कम दरों पर ऋण प्रदान करते हैं, जैसे कि शहरी बुनियादी ढाँचा, खनन, भारी उद्योग तथा सिंचाई प्रणाली आदि।
- विकास बैंक, वाणिज्यिक बैंकों से भिन्न होते हैं, जो एक परिपक्वता बेमेल (बैंक की तरलता और सॉल्वेंसी का एक संभावित कारण) से बचने के लिये लघु से मध्यम अवधि के लिये राशि जमा करते हैं तथा समान परिपक्वता के लिये ऋण देते हैं।
- भारत में पहला DFI वर्ष 1948 में भारतीय औद्योगिक वित्त निगम (IFCI) की स्थापना के साथ शुरू हुआ था।
- इसके बाद वर्ष 1955 में विश्व बैंक के समर्थन के साथ 'भारतीय औद्योगिक ऋण और निवेश निगम' (ICICI) की स्थापना की गई।
- वर्ष 1964 में भारतीय औद्योगिक विकास बैंक (IDBI) बुनियादी ढाँचा परियोजनाओं और उद्योगों के लिये दीर्घकालिक वित्तपोषण को बढ़ावा देने के उद्देश्य के साथ अस्तित्व में आया।
- हालाँकि वर्ष 1970-80 के दशक के दौरान DFI को गैर-निष्पादित आस्तियों को बढ़ाने के नाम पर अपयश का सामना करना पड़ा, जो कथित तौर पर राजनीतिक रूप से प्रेरित ऋण वितरण और आर्थिक, तकनीकी एवं वित्तीय व्यवहार्यता के लिये निवेश परियोजनाओं का आकलन करने में अपर्याप्त व्यावसायिकता के कारण हुआ।
- इन कारकों को देखते हुए नरसिंहम समिति (1991) ने डीएफआई को भंग करने की सिफारिश की और तत्कालीन सक्रिय विकास वित्तीय संस्थानों को वाणिज्यिक बैंकों में बदल दिया गया।

विकास वित्तीय संस्थान की आवश्यकता:

- NPA संकट: बैंकिंग क्षेत्र के एनपीए में वृद्धि और वर्तमान परिस्थिति में विकास चक्र को पुन: गति प्रदान करने हेतु अवसंरचना क्षेत्र के वित्तपोषण में वृद्धि की आवश्यकता ने डीएफआई की स्थापना पर नए सिरे से ध्यान देने के विचार को बढ़ावा दिया है।
  - इस तरह की परियोजनाओं में लंबी अवधि के वित्तपोषण से खराब ऋणों के कारण बैंकों की संपत्ति और देनदारियों के बीच पहले से ही व्यापक अंतर और भी अस्थिर हो जाएगा।
- COVID-19 महामारी के कारण उत्पन्न आर्थिक संकट: यूक्रेनी आर्थिक इतिहासकार अलेक्जेंडर गेर्सचेनक्रोन द्वारा प्रतिपादित सिद्धांत के अनुसार, किसी भी देश का पिछड़ापन जितना अधिक होगा, वहाँ के आर्थिक विकास (विशेष रूप से कम-से-कम समय में उन्नत अर्थव्यवस्थाओं की बराबरी करने के लिये दीर्घकालिक वित्तपोषण) में राज्य की भूमिका उतनी ही अधिक होगी।

नोट :

- COVID-19 महामारी ने असमानता, गरीबी की खाई, बेरोज़गारी और अर्थव्यवस्था में आ रही गिरावट की गति बढ़ा दी है।
- अत: डीएफआई के माध्यम से बुनियादी ढाँचे का निर्माण त्वरित आर्थिक सुधार में सहायता कर सकता है।

- 5 ट्रिलियन डॉलर की अर्थव्यवस्था का लक्ष्य: सरकार ने वर्ष 2025 तक 5 ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर की अर्थव्यवस्था के लक्ष्य को प्राप्त करने की परिकल्पना की है।
  - हालाँकि इस लक्ष्य की प्राप्ति पूरे देश में विश्व स्तर के बुनियादी ढाँचे के विकास पर निर्भर करेगी।
  - नीति आयोग के अनुमान के अनुसार, बुनियादी ढाँचे के लिये वर्ष 2030 तक 4.5 ट्रिलियन अमेरिकी डॉलर की आवश्यकता होगी।

आगे की राह:

- डीएफआई के लिये पूंजी जुटाना: लंबी अवधि के ऋण जारी करने के लिये DFI को समान रूप से वित्त के दीर्घकालिक स्रोतों की आवश्यकता होगी।
  - पूर्व में डीएफआई सस्ते सरकारी फंड्स पर अधिक निर्भर थे और आज के वाणिज्यिक बैंकों को लंबी अवधि की परियोजनाओं को निधि देने हेतु खुदरा जमा राशि पर निर्भरता के कारण परिसंपत्ति-देयता बेमेल की स्थिति का सामना करना पड़ा।
  - ऐसे में नए डीएफआई के लिये फंडिंग के विविध स्रोतों पर ध्यान केंद्रित करना सबसे बेहतर विकल्प हो सकता है।
  - वर्तमान में डीएफआई को पूंजीगत लाभ/कर-मुक्त बॉण्ड जारी कर, विदेशी ऋण और बहुपक्षीय एजेंसियों से प्राप्त ऋण आदि जैसे वैकल्पिक मार्गों द्वारा पर्याप्त रूप से पूंजीकृत किया जा सकता है।
- विशेषीकृत DFIs: 'सुपर मार्केट' ऋणदाता जो किसी भी परियोजना को निधि देने के लिये तैयार रहते हैं, की तुलना में विशिष्ट वर्टिकल पर ध्यान केंद्रित करने वाले विशेषीकृत परियोजना करदाता परियोजना मूल्यांकन कौशल के निर्माण और जोखिम प्रबंधन में बेहतर प्रदर्शन करते हैं।
  - अत: सरकार को NHB और नाबार्ड (NABARD) जैसे पुनर्वित्तीयन संस्थानों की सफलता पर आधारित कई विशेषीकृत डीएफआई की स्थापना पर विचार करना चाहिये।
- सुशासन सुनिश्चित करना: एक डीएफआई के लिये राजनीतिक हस्तक्षेप या ऋण धोखाधड़ी से मुक्त होना आवश्यक है, परंतु वित्तीय संस्थानों के बोर्ड पर निजी शेयरधारकों या पेशेवर प्रबंधकों का होना सुशासन सुनिश्चित करने के लिये पर्याप्त नहीं है।
  - इसे बाहरी नियंत्रण और संतुलन की एक मज़बूत प्रणाली (जैसे-RBI द्वारा पर्यवेक्षण तथा लेखा परीक्षकों एवं रेटिंग एजेंसियों द्वारा उचित निगरानी आदि) द्वारा समर्थन प्रदान करना होगा।
- व्यावसायिक सुगमता सुनिश्चित करना: इससे पहले कई महत्त्वाकांक्षी राजमार्ग और पाइपलाइन परियोजनाएँ लगातार स्थानीय विरोध, भूमि अधिग्रहण संकट, पूर्वव्यापी कर तथा खराब अनुबंध प्रवर्तन के कारण लंबे समय तक स्थगित रही हैं।
  - डीएफआई की सफलता इस तरह के मुद्दों के समाधान और ईज़ ऑफ डूइंग बिज़नेस के मार्ग में व्याप्त रुकावटों को दूर करने के प्रयासों पर निर्भर करेगी।

निष्कर्ष:

सतत् विकास के लिये अवसंरचना क्षेत्र में निवेश को बढ़ावा दिया जाना बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, परंतु वर्तमान में ऋण बाज़ार में लंबे समय से व्याप्त समस्याओं को भी हल करने की आवश्यकता है जो लंबी अवधि के वित्तपोषण प्रवाह को बाधित करती हैं।

केंद्रीय बजट और स्वास्थ्य

संदर्भ:

वर्तमान में विश्व के अधिकांश देशों की तरह ही भारत भी COVID-19 की इस अप्रत्याशित वैश्विक महामारी का सामना कर रहा है। इस महामारी ने एक बार पुन: सिद्ध किया है कि हमारा सबसे बड़ा संसाधन देश के नागरिक हैं, अत: इसने लोगों की देखभाल सुनिश्चित करने के लिये एक मज़बूत स्वास्थ्य प्रणाली की तत्काल आवश्यकता को रेखांकित किया है।

वित्तीय वर्ष 2021-22 के केंद्रीय बजट में स्वास्थ्य क्षेत्र के लिये एक समग्र दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है, जिसके तहत पिछले वित्तीय वर्ष की तुलना में स्वास्थ्य क्षेत्र के बजटीय आवंटन में 137% की वृद्धि के साथ 'निवारक', 'उपचारात्मक' और 'स्वास्थ्य-देखभाल' के पहलुओं को शामिल किया गया है।

वित्तीय वर्ष 2020-21 के आवंटन की तुलना में स्वास्थ्य क्षेत्र पर परिव्यय लगभग 10% तक कम कर दिया गया है।

स्वास्थ्य क्षेत्र की वर्तमान स्थिति:

- वर्ष 2020 में COVID-19 के लगभग 11 मिलियन मामलों और एक लाख से अधिक संक्रमित लोगों को अस्पताल में भर्ती करने की आवश्यकता के कारण भारतीय स्वास्थ्य तंत्र को काफी दबाव का सामना करना पड़ा।
- वर्तमान में भारत में 1145 लोगों पर केवल एक चिकित्सक उपलब्ध है, जो विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) द्वारा अनुशंसित दर (1000:1) से काफी कम है।
- भारत ने वित्तीय वर्ष 2020-21 में अपने सकल घरेलू उत्पाद का 1.8% स्वास्थ्य क्षेत्र पर खर्च किया और पूर्व के वर्षों में यह अनुपात 1-1.5% था।
  - भारत में स्वास्थ्य क्षेत्र हेतु किया जाने वाला वित्तीय आवंटन 'आर्थिक सहयोग और विकास संगठन' (Organisation of Economic Co-operation and Development- OECD) देशों के औसत (7.6%) और ब्रिक्स (BRICS) देशों द्वारा स्वास्थ्य क्षेत्र पर औसत खर्च (3.6%) की तुलना में काफी कम है।
  - परिणामस्वरूप भारत स्वास्थ्य से जुड़े 'आउट ऑफ पॉकेट एक्सपेंडिचर' (OOPE) के मामले में विश्व के शीर्ष देशों में शामिल है।
- अनुमानों के अनुसार, भारत में स्वास्थ्य सेवाओं पर होने वाला आउट ऑफ पॉकेट एक्सपेंडिचर लगभग 62% के करीब है, जो वैश्विक औसत (18%) का लगभग तीन गुना है।
- वर्ष 2019 में जॉन्स हॉपकिन्स ब्लूमबर्ग स्कूल ऑफ पब्लिक हेल्थ द्वारा जारी एक रिपोर्ट के अनुसार, भारत में प्रत्येक 100 में से लगभग एक बच्चे की दस्त या निमोनिया के कारण पाँच वर्ष की आयु से पहले ही मृत्यु हो जाती है।

आउट ऑफ पॉकेट एक्सपेंडिचर (Out-of-Pocket Expenditure- OOPE):

- आउट-ऑफ-पॉकेट एक्सपेंडिचर से आशय ऐसे खर्च से है जिसे सीधे एक रोगी द्वारा वहन किया जाता है और जहाँ बीमा, स्वास्थ्य सेवाओं की पूरी लागत को कवर नहीं करता है। इनमें परिवारों द्वारा सीधे वहन किये गए लागत-साझाकरण, स्व-उपचार और अन्य प्रकार के खर्च शामिल हैं।
- हालाँकि इसमें पहले से दिया गया स्वास्थ्य कर या बीमा किश्त जैसे खर्च शामिल नहीं होते हैं।

स्वास्थ्य बजट 2020-21:

- बजट 2021-22 में स्वास्थ्य और कल्याण पर 2,23,846 करोड़ रुपए के परिव्यय की प्रतिबद्धता व्यक्त की गई है। यह पिछले वर्ष के बजटीय अनुमान (94,452 करोड़ रुपए) से 137% अधिक है।
  - इसके तहत पेयजल और स्वच्छता पर 60,030 करोड़ रुपए का परिव्यय, पोषण पर 2,700 करोड़ रुपए का परिव्यय, वित्त आयोग अनुदान के रूप में लगभग 49,000 करोड़ रुपए और टीकाकरण के लिये 35,000 करोड़ रुपए का परिव्यय शामिल है।
  - जल और स्वच्छता क्षेत्र को 60,030 करोड़ रुपए का आवंटन किया गया, इस क्षेत्र के आवंटन में पिछले वर्ष (21,518 करोड़ रुपए) की तुलना में 179% की वृद्धि देखी गई है।
  - यह आर्थिक सर्वेक्षण की सिफारिशों के अनुरूप है जिसमें सार्वजनिक स्वास्थ्य पर होने वाले व्यय को बढ़ाकर सकल घरेलू उत्पाद का 2.5-3% तक करने की सिफारिश की गई थी।
  - देश भर में न्यूमोकोकल वैक्सीन के कवरेज का विस्तार करने हेतु लिया गया सरकार का निर्णय केंद्रीय बजट 2021 में सार्वजनिक स्वास्थ्य संबंधी एक अन्य महत्त्वपूर्ण घोषणा थी।
  - केंद्रीय बजट के तहत प्रधानमंत्री आत्मनिर्भर स्वस्थ भारत योजना (PMANSBY) को लॉन्च करने की घोषणा भी की गई।
    - इसके तहत स्थानीय सरकारी निकायों के माध्यम से प्राथमिक स्वास्थ्य प्रणाली को मज़बूत करने के लिये 13,192 करोड़ रुपए के वित्त आयोग अनुदान के साथ-साथ स्वास्थ्य और कल्याण केंद्रों के विस्तार पर ज़ोर दिया गया है।

संबंधित मुद्दे:

- बजटीय आवंटन में कमी: केंद्रीय बजट 2021-22 में केंद्रीय स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय को 71,268.77 करोड़ रुपए आवंटित किये गए हैं। हालाँकि पिछले वर्ष इसके लिये संशोधित अनुमान 78,866 करोड़ रुपए था।
  - इसका अर्थ है केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय के बजटीय आवंटन में लगभग 10% की कमी आई है।
- टीकाकरण के लिये आवंटन: स्वास्थ्य परिव्यय के अलावा वित्तीय वर्ष 2021-22 में COVID-19 टीकाकरण के लिये 35,000 करोड़ रुपए आवंटित किये गए हैं।
  - ऐसे में टीकों की सबसे सस्ती कीमत को आधार मानते हुए भी भारत इस राशि के साथ अपनी केवल 65% आबादी का ही टीकाकरण कर पाएगा।
  - इसके अतिरिक्त COVID-19 वैक्सीन के लिये दिया जाने वाला अनुदान संपूर्ण स्वास्थ्य प्रणाली को किसी भी प्रकार से मज़बूत नहीं करेगा।
- स्वास्थ्य, जल और स्वच्छता क्षेत्र का साझाकरण: हालिया बजट में जल और स्वच्छता के लिये वित्तीय आवंटन बढ़ा है, जबकि पोषण के लिये आवंटन में 27% की कमी आई है।
  - स्वास्थ्य, जल, स्वच्छता और पोषण को एक साथ जोड़कर देखा जाए तो "स्वास्थ्य" सेवाओं के आवंटन में 137% की वृद्धि हुई है, जबकि वास्तविकता में स्वास्थ्य सेवाओं और पोषण के वित्तीय आवंटन में गिरावट दर्ज की गई है।
- अपेक्षित क्षेत्रों में चूक: केंद्रीय बजट में सक्रिय दवा सामग्री (API) पर जीएसटी में किसी भी प्रकार की कमी का उल्लेख करने में स्पष्ट रूप से चूक हुई है।
  - चिकित्सा उपकरणों पर आयात शुल्क में कमी इस बजट में शामिल न किये गए महत्त्वपूर्ण पहलुओं में से एक है, जो कि नागरिकों के लिये स्वास्थ्य सेवाओं की लागत को कम करने में सहायक हो सकता था।

आगे की राह:

- स्वास्थ्य सेवाओं की लागत में कमी: स्वास्थ्य सेवाओं की लागत में कमी लाने और उनकी गुणवत्ता को बढ़ाने के लिये एम्स जैसी कुछ गिनी-चुनी उत्कृष्ट संस्थाओं के अलावा अन्य मेडिकल कॉलेजों में निवेश को प्रोत्साहित किया जाना चाहिये।
  - सरकार एक विस्तारित स्वास्थ्य बजट में चिकित्सा शिक्षा, बुनियादी ढाँचे और अनुसंधान पर बेहतर तरीके से ध्यान केंद्रित कर सकती है।
- सार्वजनिक-निजी साझेदारी: अन्य नैदानिक प्रक्रियाओं व अस्पतालों में सार्वजनिक निजी भागीदारी (पीपीपी) पर ज़ोर देने के साथ टीकाकरण अभियान के लक्ष्य की त्वरित और सफल प्राप्ति के लिये निजी क्षेत्र की विशेषज्ञता का लाभ उठाया जाना चाहिये।
- अनुसंधान और विकास को प्रोत्साहन तथा जीएसटी में कमी: नई दवाओं के विकास में अधिक निवेश को बढ़ावा देने हेतु कर में अतिरिक्त कटौती के माध्यम से अनुसंधान और विकास को प्रोत्साहन प्रदान करना तथा जीवन रक्षक एवं अति आवश्यक दवाओं पर जीएसटी को कम करना।
- स्वास्थ्य कर्मियों का कौशल विकास: लोगों को प्रस्तावित स्वास्थ्य सुविधाओं का लाभ प्रदान करने के लिये वर्तमान में कार्यरत स्वास्थ्य कर्मियों के प्रशिक्षण, पुनर्कौशल और ज्ञान के उन्नयन पर विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है।
  - इस आवश्यकता को पूरा करने के लिये सरकार सार्वजनिक-निजी सहयोग को बढ़ाने पर विचार कर सकती है।

निष्कर्ष:

पिछले कुछ वर्षों में सरकार के एजेंडे में स्वास्थ्य क्षेत्र का एक प्रमुख स्थान रहा है तथा इस महामारी के बीच इसका महत्त्व और अधिक बढ़ गया है।

हालाँकि इस क्षेत्र में अभी बहुत कुछ किया जाना बाकी है परंतु केंद्रीय बजट 2021–22 ने COVID-19 युग के बाद स्वास्थ्य क्षेत्र में लचीलापन बढ़ाने और सतत् विकास लक्ष्य के एजेंडे के तहत वर्ष 2030 तक सार्वभौमिक स्वास्थ्य कवरेज लक्ष्य को प्राप्त करने के लिये एक मज़बूत नींव रखी है।

नोट :

असहमति का अधिकार

संदर्भ:

हाल ही में देश में किसानों द्वारा किये जा रहे विरोध प्रदर्शनों की पृष्ठभूमि में सर्वोच्च न्यायालय में पिछले वर्ष दिल्ली के शाहीन बाग क्षेत्र में हुए विरोध प्रदर्शनों पर एक समीक्षा याचिका दायर की गई है। न्यायालय ने अपने पूर्व के फैसले की समीक्षा करने से इनकार कर दिया, जिसमें कहा गया था कि किसी व्यक्ति को विरोध करने का पूर्ण/अनिवार्य अधिकार नहीं है और यह स्थान तथा समय के संदर्भ में प्राधिकारी के आदेशों के अधीन हो सकता है।

यह राज्य की सुरक्षा, स्वतंत्रता और उत्तरदायित्त्व तथा नैतिकता के बीच की रस्साकशी पर एक बार पुन: हमारा ध्यान आकर्षित करता है। जहाँ एक तरफ यह सरकार की ज़िम्मेदारी है कि वह यह सुनिश्चित करे की कोई भी विरोध प्रदर्शन हिंसक अराजकता में न बदलने पाए। वहीं दूसरी तरफ सार्वजनिक विरोध प्रदर्शन एक स्वतंत्र और लोकतांत्रिक समाज की पहचान हैं, जो यह मांग करता है कि सत्ता में बैठे लोगों द्वारा आम जनता की आवाज़ सुनी जानी चाहिये तथा उचित चर्चा और परामर्श के बाद निर्णय लिये जाने चाहिये।

इस दुविधा के बावजूद भारतीय समाज के लोकतांत्रिक ताने-बाने को संरक्षित करने के लिये देश के लोकतांत्रिक प्रणाली से जुड़े हितधारकों का यह उत्तरदायित्त्व है कि संविधान के अनुच्छेद 19 के तहत प्रदान किये गए स्वतंत्रता के किसी भी अधिकार को गंभीर रूप से क्षति नहीं पहुँचनी चाहिये।

असहमति का महत्त्व:

- मौलिक अधिकार: भारतीय संविधान में नागरिकों को शांतिपूर्ण ढंग से विरोध प्रदर्शन करने का अधिकार प्रदान किया गया है, भारतीय संविधान का अनुच्छेद 19(1)(a) वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान करता है तथा अनुच्छेद 19(1)(b) नागरिकों को बगैर हथियार के एवं शांतिपूर्वक ढंग से इकट्ठा होने का अधिकार देता है।
- ऐतिहासिक पृष्ठभूमि: भारतीय संविधान की पृष्ठभूमि उसके (भारत के) उपनिवेशवाद-विरोधी संघर्ष से बनी है, जिसके भीतर एक राजनीतिक सार्वजनिक क्षेत्र और लोकतांत्रिक संविधान के बीज बोए गए थे।
    - भारतीयों ने औपनिवेशिक नीतियों और कानूनों पर सार्वजनिक रूप से अपने विचार व्यक्त करने तथा उनके खिलाफ एक सार्वजनिक राय बनाने के लिये बहुत ही कठोर एवं लंबा संघर्ष किया है।
- शक्ति के दुरुपयोग की जाँच: संघ या समूह बनाने का अधिकार राजनीतिक उद्देश्यों के लिये समूह बनाने हेतु आवश्यक है- उदाहरण के लिये सामूहिक रूप से सरकार के फैसलों को चुनौती देना और यहाँ तक कि शांतिपूर्वक तथा कानूनी तौर पर सरकार को अपदस्थ करने का प्रयास, न केवल शक्ति के दुरुपयोग की जाँच करने बल्कि इस पर प्रश्न उठाने आदि मामलों में।
    - शांतिपूर्वक इकट्ठा होने का अधिकार राजनीतिक दलों और नागरिक निकायों जैसे- विश्वविद्यालय से जुड़े छात्र समूहों को प्रदर्शनों, आंदोलन तथा सार्वजनिक बैठकों के माध्यम से सरकार के निर्णयों पर प्रश्न उठाने, आपत्ति जताने व निरंतर विरोध आंदोलनों को शुरू करने में सक्षम बनाता है।
- लोकतंत्र के प्रहरी के रूप में नागरिक: लोग लोकतंत्र के प्रहरी के रूप में कार्य करते हैं और सरकारों के निर्णयों की लगातार निगरानी करते हैं, जो सरकारों को उनकी नीतियों और कार्यप्रणाली के बारे में प्रतिक्रिया प्रदान करता है, जिसके बाद संबंधित सरकार परामर्श, बैठकों और चर्चा के माध्यम से अपनी गलतियों को चिह्नित करते हुए उन्हें सुधारती है।
- सुप्रीम कोर्ट का पर्यवेक्षण: रामलीला मैदान घटना बनाम गृह सचिव, भारतीय संघ और अन्य मामले (वर्ष 2012) में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था, नागरिकों का इकठ्ठा होकर शांतिपूर्ण विरोध करना एक मौलिक अधिकार है जिसे एक मनमानी कार्यकारी या विधायी कार्रवाई द्वारा छीना नहीं जा सकता है।

असहमति के अधिकार की चुनौतियाँ:

सरकार के प्रस्तावों या निर्णयों को चुनौती देने के लिये की गई कोई भी सार्वजनिक कार्रवाई तब तक ही संवैधानिक रूप से वैध है, जब तक कि यह शांतिपूर्वक ढंग से की जाती है। भारतीय संविधान का अनुच्छेद 19(2) लोगों के बगैर हथियार के और शांतिपूर्वक इकट्ठा होने के अधिकार पर पर्याप्त प्रतिबंध लगाता है।

ये प्रतिबंध भारत की संप्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, सार्वजनिक व्यवस्था, शालीनता या नैतिकता या न्यायालय की अवमानना, या उकसावे आदि मामलों में लगाए जा सकते हैं।

- हालाँकि हालिया समीक्षा याचिका में याचिकाकर्त्ताओं ने कहा कि शाहीन बाग मामले में सार्वजनिक स्थान पर अनिश्चितकालीन कब्ज़े के खिलाफ दिया गया फैसला पुलिस के लिये वास्तविक कारणों से प्रेरित/ संबंधित विरोध प्रदर्शनों के मामले में अत्याचार करने का एक लाइसेंस साबित हो सकता है।
- गौरतलब है कि हाल ही में न केवल प्रदर्शनकारी किसानों बल्कि उनके समर्थक जिनमें हास्य कलाकार और पत्रकार भी शामिल थे, पर देशद्रोह का आरोप लगाया गया था।
- इसके अतिरिक्त ऐसे अधिकारों के प्रयोग पर कोई भी मनमाना अवरोध - उदाहरण के लिये धारा 144 लागू करना आदि असंतोष/असहमति को सहन करने में सरकार की अक्षमता को दर्शाता है।

आगे की राह:

- सक्रिय न्यायपालिका: संवैधानिक मामलों में एक निष्पक्ष और प्रभावी न्यायिक तंत्र सड़कों पर होने वाले आंदोलनों को प्रभावी रूप से रोक सकता है।
    - अध्ययनों से पता चला है कि जब निष्पक्ष मुकदमों के माध्यम से मुद्दों को प्रभावी ढंग से हल किया जा सकता है, तो उस स्थिति में सामाजिक आंदोलन कम आक्रामक और कम विरोधी हो सकते हैं।
    - इसके अलावा न्यायालयों को समय पर अधिनिर्णयन सुनिश्चित करने की आवश्यकता है, क्योंकि यदि समय पर कानून द्वारा मान्यता प्राप्त प्रक्रिया के तहत विवादित कानूनों की वैधता पर विचार या अधिनिर्णयन किया गया होता, तो सड़कों पर आंदोलनों की तीव्रता को संभवत: कम किया जा सकता था।
- सार्वजनिक जाँच प्रणाली की स्थापना: यूनाइटेड किंगडम में एक मज़बूत सार्वजनिक जाँच प्रणाली मौजूद है जो पारिस्थितिक मांगों को संसाधित करने और उन्हें राजनीतिक प्रणाली में एकीकृत करने का कार्य करती है, इस प्रकार यह प्रणाली लोगों के बहिष्करण और इन्हें हाशिये पर छोड़ दिये जाने के कारण उत्पन्न होने वाले आंदोलनों के कट्टरपंथीकरण को कम करती है।
- नागरिक संस्कृति को अपनाना: नागरिकों को भी प्रशासन के कार्यों में सहयोग देते हुए एक नागरिक संस्कृति को अपनाने की आवश्यकता है जो राज्य के अधिकार की स्वीकृति और नागरिक कर्तव्यों के प्रति भागीदारी में विश्वास रखती है।

निष्कर्ष:

सार्वजनिक विरोध में भाग लेने के लिये वाक् और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, समूह बनाने और शांतिपूर्ण ढंग से एकत्र होने का अधिकार बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इस संदर्भ में सार्वजनिक रूप से चर्चा करने की आवश्यकता है, अब समय आ गया है जब अनुच्छेद 19 (2) में उल्लिखित उचित प्रतिबंधों को समीक्षा के तहत लाया जाना चाहिये।

केंद्रशासित प्रदेशों के संरचनात्मक मुद्दे

संदर्भ:

हाल ही में पुद्दुचेरी विधानसभा के कुछ विधायकों ने इस्तीफा दे दिया, यह विधानसभा के सदस्यों द्वारा इस्तीफा देने के एक परिचित पैटर्न को दर्शाता है। इस तरह के इस्तीफे सदन में सत्ताधारी दल के बहुमत को अचानक से कम कर देते हैं, जो आगे चलकर सरकार गिरने का कारण बनता है। इस पैटर्न के पीछे मंशा यह है कि किसी भी दल बदलने वाले विधायक को दलबदल विरोधी कानून के तहत अयोग्य घोषित किये जाने के संकट का सामना न करना पड़े। सामान्य तौर पर इस प्रकार के इस्तीफे ऐसे केंद्रशासित प्रदेशों के सत्तारूढ़ दलों से होते हैं जो केंद्र में सत्तारूढ़ दल के विरोधी होते हैं।

हालाँकि यह एकमात्र तरीका नहीं है जिसके माध्यम से केंद्रशासित प्रदेशों में चुनी हुई सरकारों को कमज़ोर किया जाता है। ऐसे कई संवैधानिक और कानूनी प्रावधान हैं जो भारतीय संघ की इकाइयों के रूप में केंद्रशासित प्रदेशों (संघ शासित प्रदेशों) की संरचनात्मक कमज़ोरी को दर्शाते हैं।

केंद्रशासित प्रदेशों की संरचनात्मक कमज़ोरी:

- विधानमंडल की संरचना: भारतीय संविधान के अनुच्छेद 239(A) को मूल रूप से 14वें संवैधानिक संशोधन अधिनियम, 1962 द्वारा लाया गया था, इसका उद्देश्य संसद को केंद्रशासित प्रदेशों के लिये विधायिका का गठन करने में सक्षम बनाना था।
    - इस कानून का परिणाम यह है कि 'संघ राज्य क्षेत्र शासन अधिनियम, 1963' में एक सामान्य संशोधन के माध्यम से ही केंद्रशासित प्रदेशों में 50% से अधिक मनोनीत सदस्यों के साथ विधायिका का गठन किया जा सकता है।
    - हालाँकि इसके बाद भी यह प्रश्न बना रहेगा कि एक मनोनीत सदस्यों की प्रधानता वाला सदन प्रतिनिधि लोकतंत्र को कैसे बढ़ावा दे सकता है ?
- नामांकन से जुड़े मुद्दे: संघ राज्य क्षेत्र शासन अधिनियम, 1963 के तहत पुदुचेरी के लिये 33 सदस्यीय सदन का प्रावधान किया गया है, जिसमें से तीन सदस्यों को केंद्र सरकार द्वारा मनोनीत किया जाता है।
    - इसलिये जब केंद्र सरकार ने पुदुचेरी सरकार से परामर्श लिये बगैर तीन सदस्यों को विधानसभा में मनोनीत किया, तो केंद्र सरकार के इस निर्णय को अदालत में चुनौती दी गई।
    - सर्वोच्च न्यायालय ने 'के. लक्ष्मीनारायण बनाम भारत संघ, 2019' मामले में कहा कि केंद्र सरकार को विधानसभा में सदस्यों को मनोनीत करने के लिये राज्य सरकार से परामर्श करने की आवश्यकता नहीं है और मनोनीत सदस्यों को निर्वाचित सदस्यों के समान ही वोट देने का अधिकार है।
- नामांकन में मनमानी: राज्यसभा के सदस्यों के लिये भी मनोनयन का प्रावधान (अनुच्छेद 80 के तहत) है। परंतु इस अनुच्छेद के तहत उन क्षेत्रों को निर्दिष्ट किया गया है जिनसे जुड़े लोगों को ही राज्यसभा के सदस्य के रूप में मनोनीत किया जा सकता है।
    - हालाँकि पुदुचेरी विधानसभा के लिये मनोनीत सदस्यों के मनोनयन के मामले में अनुच्छेद 239(A) या संघ राज्य क्षेत्र शासन अधिनियम, 1963 के तहत ऐसी किसी भी अनिवार्य योग्यता का उल्लेख नहीं किया गया है।
    - इसके कारण यह कानून केंद्रशासित प्रदेशों में विधानमंडल के सदस्यों के मनोनयन के मामलों में केंद्र सरकार को मनमानी करने का अवसर प्रदान करता है।
- प्रशासक की शक्ति: केंद्रशासित प्रदेशों को उनकी आवश्यक स्वायत्तता के लिये कभी भी पूरी तरह से लोकतांत्रिक व्यवस्था नहीं दी गई। ऐसे में प्रशासक (उपराज्यपाल) में निहित शक्ति और विधायिका वाले केंद्रशासित प्रदेश की निर्वाचित सरकार की शक्तियों के बीच समय-समय पर संघर्ष/तनाव देखने को मिलता है।
    - संघ राज्य क्षेत्र शासन अधिनियम की धारा 44 और संविधान के अनुच्छेद 239 AA(4) के तहत प्रशासक को राज्य मंत्रिपरिषद के निर्णयों पर अपनी असहमति व्यक्त करने और मामले को राष्ट्रपति को संदर्भित करने की शक्ति दी गई है।
    - चूँकि राष्ट्रपति, केंद्र सरकार की सलाह पर निर्णय लेता है। अत: वास्तविकता में ऐसे विवादित मुद्दे पर अंतत: केंद्र सरकार ही निर्णय लेती है।
    - इसका एक उदाहरण पुदुचेरी के मामले में देखा जा सकता है, जहाँ उपराज्यपाल और मंत्री परिषद के बीच चल रहे तनाव के लंबे समय से चिरस्थायी बने रहने के बाद मुख्यमंत्री ने राष्ट्रपति भवन पहुँचकर उपराज्यपाल को हटाने की मांग की।
    - इसी तरह राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र दिल्ली में अक्सर उपराज्यपाल के खिलाफ मंत्रियों द्वारा गैर-सहकारी संघवाद का रवैया अपनाने की शिकायतें सुनने को मिलती हैं।
- अधिकार क्षेत्र की ओवरलैपिंग: संघ राज्य क्षेत्र शासन अधिनियम, 1963 के तहत पुदुचेरी के लिये एक मंत्रिपरिषद के साथ विधानसभा की व्यवस्था की गई है। हालाँकि पुदुचेरी की विधानसभा को कानून बनाने का अधिकार है, परंतु पुदुचेरी का उपराज्यपाल, मुख्यमंत्री की अध्यक्षता वाली मंत्रिपरिषद की सहायता और सलाह को मानने के लिये बाध्य नहीं है।
    - इससे अधिकार क्षेत्र की ओवरलैपिंग होती है, जो केंद्र सरकार और केंद्रशासित प्रदेश की निर्वाचित सरकार के बीच संघर्ष का कारण बनता है।

आगे की राह:

- सहकारी संघवाद का अनुसरण करना: 'दिल्ली सरकार बनाम भारत संघ, 2019' मामले में सर्वोच्च न्यायालय की संवैधानिक पीठ ने कहा था कि प्रशासक (उपराज्यपाल) को केंद्रशासित प्रदेश की चुनी हुई सरकार के कामकाज को बाधित करने के लिये अपनी शक्ति का दुरुपयोग नहीं करना चाहिये। साथ ही उसके और मंत्रिपरिषद के बीच के मतभेदों को दूर करने के सभी संभावित विकल्पों के विफल रहने के बाद ही इसका उपयोग किया जाना चाहिये।
  - हालाँकि सरकारों द्वारा इस निर्णय का पालन पूरी तरह नहीं किया गया है। अत: केंद्र सरकार और केंद्रशासित प्रदेशों की सरकारों दोनों को सहकारी संघवाद के सिद्धांतों का अनुसरण करने की आवश्यकता है।
- वाशिंगटन डीसी मॉडल पर विचार: भारत सरकार, केंद्र सरकार और केंद्रशासित प्रदेशों की सरकारों के बीच सत्ता के प्रशासनिक बँटवारे के मॉडल का अनुकरण कर सकती है।
  - वाशिंगटन डीसी में लागू इस मॉडल के तहत केवल सामरिक रूप से महत्त्वपूर्ण क्षेत्र और इमारतें ही संघीय सरकार के प्रभावी नियंत्रण में रहती हैं तथा शेष क्षेत्र के प्रशासन का अधिकार वाशिंगटन राज्य के पास है।
  - इसे देखते हुए राजनीतिक संस्थानों, रक्षा प्रतिष्ठानों आदि जैसे सामरिक महत्त्व के संस्थान केंद्र सरकार के अधिकार क्षेत्र में रह सकते हैं और इनके अलावा अन्य क्षेत्रों को प्रभावी रूप से केंद्रशासित प्रदेशों की सरकारों को सौंपा जा सकता है।
- आवश्यक सुधार: केंद्रशासित प्रदेशों की सरकारों हेतु प्रभावी स्वायत्तता सुनिश्चित करने के लिये कानूनी और संवैधानिक प्रावधानों में संशोधन की आवश्यकता है।

निष्कर्ष: केंद्र सरकार को उन तर्कों/कारकों का सम्मान करना चाहिये जिनके आधार पर देश के कुछ केंद्रशासित प्रदेशों को एक विधायिका और मंत्रिपरिषद प्रदान करने के लिये उपयुक्त माना गया था। इसका एक प्रत्यक्ष कारण इन प्रदेशों में रह रहे लोगों की लोकतांत्रिक आकांक्षाओं को पूरा करना है।

इस संदर्भ में केंद्र सरकार को सर्वोच्च न्यायालय की टिप्पणी पर ध्यान देना चाहिये, जिसमें सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि केंद्रशासित प्रदेशों का प्रशासन केंद्र सरकार द्वारा संचालित किया जाता है, परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि केंद्रशासित प्रदेशों का केंद्र सरकार में विलय हो जाए। वे केंद्र द्वारा प्रशासित होते हैं परंतु अपने आप में एक स्वतंत्र इकाई भी हैं।

दसवीं अनुसूची की समीक्षा की आवश्यकता

संदर्भ:

हाल ही में पुदुचेरी विधानसभा में विधायकों के इस्तीफे ने फिर से दलबदल विरोधी कानून की विसंगति को उजागर किया है। पुदुचेरी विधानसभा में विधायकों ने अविश्वास प्रस्ताव को सफल बनाने के लिये सदन की सदस्य संख्या को कम करने के इरादे से इस्तीफे दिये। इससे पहले इस तरीके का प्रयोग हाल ही में मध्य प्रदेश और कर्नाटक जैसे अन्य राज्यों में भी देखा गया।

इस तरह किसी भी विधायक को दलबदल विरोधी कानून के तहत अयोग्यता का सामना नहीं करना पड़ता है। "राजनीतिक दलबदल की समस्या" का समाधान करने के उद्देश्य से वर्ष 1985 में दलबदल विरोधी कानून को दसवीं अनुसूची के रूप में संविधान में शामिल किया गया था।

दलबदल विरोधी कानून का प्राथमिक उद्देश्य सरकारों को स्थिरता प्रदान करना था। हालाँकि इस कानून ने पार्टी के प्रति विधायकों की जवाबदेहिता को सीमित किया है, साथ ही यह सरकारों की स्थिरता सुनिश्चित करने में भी विफल रहा है।

दलबदल विरोधी कानून से संबंधित मुद्दे

- निर्विवाद प्रतिनिधि लोकतंत्र: सामान्यत: विधायिका सदस्यों की मतदाताओं के एजेंट के रूप में और जनहित के विभिन्न मुद्दों पर अपने निर्णय का प्रयोग करने के हेतु व्यापक रूप से स्वीकृत दो भूमिकाएँ होती हैं।
  - दलबदल-निरोधी कानून लागू करने के बाद सांसद या विधायक को आवश्यक रूप से पार्टी के निर्देश का पालन करना होता है जो किसी मुद्दे पर उनकी स्वयं की मौलिकता प्रकट करने की स्वतंत्रता को सीमित करता है।
  - इस प्रकार की व्यवस्था प्रतिनिधि को निर्वाचन क्षेत्र के प्रतिनिधि और राष्ट्रीय विधायिका का सदस्य होने के बजाय केवल राजनीतिक दल के एजेंट के रूप में रूपांतरित करता है।

- इस प्रकार यह प्रावधान प्रतिनिधि लोकतंत्र की अवधारणा के विरुद्ध है।

- विधायी कानून: विधायिका की शक्तियों को सीमित करना दलबदल विरोधी कानून का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम रहा है।
    - इसकी वजह से नीति निर्माण, बिल और बजट की जाँच तथा निर्णयों में सांसद की मुख्य भूमिका केवल पार्टी को समर्थन या विरोध करने वाले एक वोट तक सीमित रह जाती है।
- संसदीय लोकतंत्र को रेखांकित करना: संविधान का प्रारूप प्रस्तुत करते समय डॉ. बी.आर. अंबेडकर द्वारा सरकार के राष्ट्रपति/अध्यक्षीय और संसदीय शासन स्वरूपों के बीच मतभेदों को रेखांकित किया गया।
    - उनके अनुसार, राष्ट्रपति को उच्च स्थायित्व तथा कम जवाबदेही के साथ चार साल के लिये निर्वाचित किया जाता है और केवल महाभियोग के माध्यम से ही हटाया जा सकता है।
    - राष्ट्रपति शासन व्यवस्था की तुलना में संसदीय शासन व्यवस्था में सरकार अधिक जवाबदेह होती है और लोकसभा में अविश्वास की स्थिति में सरकार को सदन से हटाया जा सकता है।
    - भारत में विधायकों की जवाबदेही मुख्य रूप से राजनीतिक पार्टी तक ही सीमित रही है। इस प्रकार दलबदल विरोधी कानून संसदीय लोकतंत्र की अवधारणा के खिलाफ काम करता है।
- दीर्घकालीन राजनीतिक स्थिरता का अभाव: दलबदल विरोधी कानून यह सुनिश्चित कर राजनीतिक स्थिरता की परिकल्पना करता है कि यदि सदस्य को इस कानून के तहत अयोग्य घोषित किया जाता है तो वह बिना दोबारा चुनाव जीते मंत्री पद नहीं प्राप्त कर सकता है।
    - हालाँकि वर्तमान पुद्दुचेरी के उदाहरण से पता चलता है कि इस प्रकार की राजनीतिक प्रणाली में पार्टी के खिलाफ वोट देने के बजाय इस्तीफा देकर सरकारों को गिराने का कार्य किया जाता है।
- अध्यक्ष की विवादास्पद भूमिका: सदन की सदस्यता से इस्तीफा देना प्रत्येक सदस्य का अधिकार है।
    - हालाँकि संविधान के अनुच्छेद 190 के अनुसार, इस्तीफा स्वैच्छिक या वास्तविक होना चाहिये, यदि अध्यक्ष को किसी बाह्य दबाव से संबंधित जानकारी मिलती है, तो वह इस्तीफा स्वीकार करने के लिये बाध्य नहीं है।
    - सामान्यत: सत्तारूढ़ दल के सदस्यों की योग्यता पर निर्णय लेने में देरी के कई उदाहरण देखे गए हैं।
    - सर्वोच्च न्यायालय ने यह निर्णय दिया कि अध्यक्ष को तीन महीने में निर्णय देना होगा लेकिन इस संबंध में अध्यक्ष की बाध्यता को निर्धारित नहीं किया गया है।

आगे की राह

- पार्टी के आंतरिक स्तर पर लोकतंत्र को मज़बूत करना: अगर राजनीतिक स्थिरता सुनिश्चित करने में पार्टी की आंतरिक प्रक्रिया चुनौतीपूर्ण है तो पार्टी के आंतरिक स्तर पर लोकतांत्रिक व्यवस्था को मज़बूत किया जाना चाहिये।
    - पार्टी में लोगों को विरासत के बजाय उनकी क्षमता के आधार पर पद और उत्तरदायित्व प्रदान किया जाना चाहिये।
- राजनीतिक दलों का विनियमन: भारत में राजनीतिक दलों को नियंत्रित करने वाले कानून की सख्त आवश्यकता है। इस तरह के कानून द्वारा राजनीतिक दलों को सूचना के अधिकार अधिनियम के तहत लाया जाना चाहिये और पार्टी के आंतरिक स्तर पर लोकतंत्र को मज़बूत करने जैसे प्रयास किये जाने चाहिये।
- चुनाव आयोग का अंतिम अधिकार: सदन का अध्यक्ष, दलबदल के मामले में अंतिम प्राधिकारी होने के कारण शक्ति पृथक्करण के सिद्धांत को प्रभावित करता है।
    - दलबदल के मामले में चुनाव आयोग के पास निर्णय का अंतिम अधिकार होना चाहिये ताकि इसके दुरुपयोग पर अंकुश लगाया जा सके।
- दलबदल विरोधी कानून के दायरे को विनियमित करना: प्रतिनिधि लोकतंत्र में दलबदल विरोधी कानून के हानिकारक प्रभाव को कम कर कानून के दायरे को केवल सरकार के उत्तरदायित्व वाले क्षेत्रों तक सीमित रखा जाना चाहिये।

निष्कर्ष

संक्षेप में बात करें तो दलबदल विरोधी कानून, विधायिका के कामकाज और उत्तरदायित्व (नागरिकों की ओर से कार्यपालिका पर नियंत्रण) हेतु हानिकारक प्रतीत हो रहा है। इस अधिनियम ने सदस्यों को विधेयकों और बजट पर सरकार के निर्णय का समर्थन करने हेतु एक मंच के रूप में रूपांतरित कर दिया है। वर्तमान घटनाएँ संविधान की दसवीं अनुसूची की प्रासंगिकता को अधिक उपर्युक्त बनाने हेतु समीक्षा की मांग करती हैं।

आर्थिक घटनाक्रम

असंगठित क्षेत्र के लिये श्रम संहिता

संदर्भ:

केंद्रीय वित्त मंत्री ने बजट 2021 के भाषण में घोषणा की थी कि सरकार द्वारा लाई गई चार श्रम संहिताओं को 1 अप्रैल, 2021 से देश में लागू किया जाएगा। ये श्रम संहिताएँ देश के पुरातन श्रम कानूनों को सरल बनाने के साथ श्रमिकों के हितों से समझौता किये बगैर आर्थिक गतिविधियों को गति प्रदान करने की परिकल्पना करती हैं।

हालाँकि सामाजिक सुरक्षा संहिता पर प्रस्तुत हालिया नियमों के मसौदे से यह संकेत मिलता है कि इसके तहत अनौपचारिक क्षेत्र के श्रमिकों की चुनौतियों पर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है।

भारत में अनौपचारिक क्षेत्र के श्रमिकों को उनके मानव और श्रम अधिकारों के उल्लंघन के जोखिम के साथ आजीविका की गरिमा, असुरक्षित एवं अनियमित काम करने की स्थिति और कम मज़दूरी आदि जैसी गंभीर चुनौतियों का सामना करना पड़ता है।

ऐसे में समाज में व्याप्त असमानता की इस खाई को समाप्त करने और एक समावेशी विकास मॉडल को अपनाने के लिये भारत में अनौपचारिक क्षेत्र से जुड़े श्रमिकों की चुनौतियों को दूर करना सरकार की प्राथमिकता होनी चाहिये।

अनौपचारिक क्षेत्र के श्रमिकों के हितों की रक्षा:

- भारत के अनौपचारिक क्षेत्र के कुल अनुमानित 450 मिलियन श्रमिकों की देश के कुल कार्यबल में लगभग 90% हिस्सेदारी है, साथ ही इसमें प्रतिवर्ष 5-10 मिलियन नए श्रमिक जुड़ जाते हैं।
- इसके अतिरिक्त ऑक्सफैम की नवीनतम वैश्विक रिपोर्ट के अनुसार, वर्ष 2020 में नौकरी गँवाने वाले कुल 122 मिलियन श्रमिकों में से 75% अनौपचारिक क्षेत्र से संबंधित थे।
- COVID-19 महामारी का अनुभव हमें बताता है कि सभी क्षेत्रों के श्रमिकों के लिये सामाजिक सुरक्षा की पहुँच सुनिश्चित करना बहुत आवश्यक है, क्योंकि COVID-19 महामारी के प्रसार को नियंत्रित करने हेतु लागू किये गए लॉकडाउन के कारण अनौपचारिक क्षेत्र की सुभेद्यता की स्थिति और अधिक गंभीर हो गई थी।
- इसके अतिरिक्त चालू वित्त वर्ष (2020-21) में भारतीय अर्थव्यवस्था में 7.7% तक की गिरावट देखे जाने का अनुमान है, अत: वर्तमान में रोज़गार के अवसरों के विकास के माध्यम से अर्थव्यवस्था को शीघ्र ही गति प्रदान करने की आवश्यकता है।

ड्राफ्ट नियमों के साथ जुड़े प्रमुख मुद्दे:

- बहिष्करण की चिंता: श्रम संहिता पर प्रस्तुत नियमों के मसौदे के तहत सभी श्रमिकों को किसी भी प्रकार के सामाजिक सुरक्षा लाभ प्राप्त करने हेतु सक्षम होने के लिये श्रम सुरक्षा पोर्टल पर अपना पंजीकरण (आधार कार्ड के साथ) करना अनिवार्य बनाया गया है।
  - इससे जहाँ एक तरफ आधार-चालित बहिष्करण को बढ़ावा मिलेगा, वहीं दूसरी तरफ अधिकांश श्रमिक आधार पंजीकरण प्रणाली के प्रति जागरूकता के अभाव में स्वयं ही पंजीकरण को पूरा नहीं कर सकेंगे।
  - इसके साथ ही प्रवासी श्रमिकों द्वारा निरंतर अंतराल पर इस पोर्टल में अपनी जानकारी को अद्यतन करना एक और संभावित चुनौती हो सकती है।
- शहरी क्षेत्र पर केंद्रित: हालाँकि सरकार के अनुसार, सुधार की इस प्रक्रिया का उद्देश्य असंगठित क्षेत्र के श्रमिकों और गिग अर्थव्यवस्था के लिये वैधानिक संरक्षण (आवश्यकता आधारित न्यूनतम मज़दूरी, गैर-खतरनाक काम करने की स्थिति, सार्वभौमिक सामाजिक सुरक्षा अधिकार आदि) कवरेज का विस्तार करना है।
  - परंतु यह संहिता अनौपचारिक क्षेत्र से संबंधित श्रमिकों की विशाल आबादी के लिये किसी भी प्रकार की सामाजिक सुरक्षा को विस्तारित करने में विफल रही है। गौरतलब है कि असंगठित क्षेत्र के रोज़गार मुख्य रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक फैले हुए हैं, साथ ही इसके तहत प्रवासी श्रमिक, स्व-नियोजित श्रमिक, होम-बेस्ड वर्कर और अन्य सुभेद्य समूहों के श्रमिक शामिल होते हैं।

- अधिकार आधारित ढाँचे का अभाव: इस संहिता के तहत सामाजिक सुरक्षा को 'अधिकार' के रूप में महत्त्व नहीं दिया गया है और न ही इसके प्रावधानों (जैसा कि संविधान में निर्धारित है) का उल्लेख किया गया है।
    - इसके अतिरिक्त संहिता में किसी भी उपयुक्त शिकायत निवारण तंत्र की स्थापना की बात नहीं कही गई है जो लाखों श्रमिकों को सुरक्षा ढाँचे की अनुपस्थिति में असुरक्षित छोड़ देगा।

आगे की राह:

- प्रवासी श्रमिकों के हितों की रक्षा: मानव विकास संस्थान (Institute for Human Development- IHD) की एक हालिया रिपोर्ट के अनुसार, देश में सुभेद्य प्रवासी श्रमिकों की कुल संख्या 115 मिलियन से लेकर 140 मिलियन तक हो सकती है।
- ऐसे में मसौदा नियमों में यह स्पष्ट किया जाना महत्त्वपूर्ण है कि प्रवासी अनौपचारिक श्रमिकों के हितों पर उनका किस प्रकार का प्रभाव पड़ेगा।
- इस संदर्भ में सरकार द्वारा शुरू की गई 'एक देश एक राशन कार्ड' पहल एक सकारात्मक कदम है।
- MSME को मज़बूत बनाना: वर्तमान में औपचारिक क्षेत्र के लगभग 40% श्रमिक सूक्ष्म, लघु और मध्यम उद्यमों (MSMEs) में कार्यरत हैं। ऐसे में यह स्वाभाविक है कि MSMEs के मज़बूत होने से आर्थिक सुधार, रोज़गार सृजन और अर्थव्यवस्था के औपचारीकरण को बढ़ावा मिलेगा।
- सीएसआर व्यय के तहत प्रशिक्षण: बड़े कॉरपोरेट घरानों को भी कॉर्पोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व (Corporate Social Responsibility-CSR) व्यय के तहत असंगठित क्षेत्रों के श्रमिकों को प्रशिक्षित करने की ज़िम्मेदारी लेनी चाहिये।
- इसके साथ ही घरेलू श्रमिकों के अधिकारों को पहचानने और उनके लिये कार्य करने की बेहतर स्थितियों को बढ़ावा देने हेतु जल्द-से-जल्द घरेलू श्रमिकों पर एक राष्ट्रीय नीति लाने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष:

सामाजिक सुरक्षा संहिता की परिकल्पना भारत में बड़ी संख्या में कार्यरत अनौपचारिक क्षेत्र के श्रमिकों के हितों की रक्षा हेतु एक कानूनी सुरक्षात्मक उपाय के रूप में की गई थी परंतु जब तक अनौपचारिक क्षेत्र के श्रमिकों की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए श्रम संहिता तैयार कर उसे लागू नहीं किया जाता, तब तक इस असमानता की खाई को समाप्त करना असंभव है।

The Vision

अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रम

भारत-रूस संबंधों की नई शुरुआत

संदर्भ:

वर्ष 2020 में ऐसी कई भू-राजनीतिक घटनाएँ देखने को मिली हैं जिन्होंने भारत और रूस दोनों के संबंधों को प्रभावित किया। इनमें अमेरिका और चीन के बीच बढ़ती प्रतिद्वंद्विता, भारत-चीन सीमा तनाव, पश्चिमी देशों और रूस के संबंधों में लगातार गिरावट तथा जो बाईडन की जीत के साथ अमेरिकी नेतृत्व में परिवर्तन आदि कुछ महत्त्वपूर्ण घटनाओं के उदाहरण हैं।

चूँकि रूस और भारत दोनों ही एक बहु-ध्रुवीय वैश्विक व्यवस्था का समर्थन करते हैं, अत: वे एक-दूसरे के राष्ट्रीय हितों को पूरा करने के लिये एक-दूसरे के लिये समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। हालाँकि बदलते भू-राजनीतिक परिदृश्य के कारण दोनों देशों के बीच संबंध उतने अच्छे नहीं हैं, जितना कि शीत युद्ध के समय में हुआ करते थे।

इस संदर्भ में भारत के विदेश सचिव की आगामी रूस यात्रा बदलते वैश्विक भू-राजनीतिक समीकरण के बीच भारत-रूस संबंधों की प्रासंगिकता की समीक्षा करने का एक उपयुक्त अवसर प्रदान करती है।

भारत के लिये रूस का महत्त्व:

- चीनी आक्रामकता के खिलाफ संतुलन: पूर्वी लद्दाख के सीमावर्ती क्षेत्रों में चीनी आक्रामकता ने भारत-चीन संबंधों की प्रगति को प्रभावित किया है, हालाँकि यह भारत-चीन के बीच तनाव को कम करने में रूस की क्षमता को भी दर्शाता है।
  - रूस ने लद्दाख के विवादित गलवान घाटी क्षेत्र में भारत और चीन के सैनिकों के बीच हुए हिंसक संघर्ष के बाद रूस, भारत तथा चीन के विदेश मंत्रियों के बीच एक त्रिपक्षीय बैठक का आयोजन किया था।
- आर्थिक जुड़ाव के उभरते नए क्षेत्र: हथियार, हाइड्रोकार्बन, परमाणु ऊर्जा तथा हीरे जैसे सहयोग के पारंपरिक क्षेत्रों के अलावा भारत और रूस के बीच आर्थिक जुड़ाव के नए क्षेत्रों (जैसे- रोबोटिक्स, नैनोटेक, बायोटेक, खनन, कृषि-औद्योगिक एवं उच्च प्रौद्योगिकी) में अवसरों के उभरने की संभावना है।
  - भारत द्वारा रूस के सुदूर पूर्व और आर्कटिक क्षेत्र में अपनी पहुँच के विस्तार के लिये कार्य किया जा रहा है। इसके साथ ही दोनों देशों के बीच कनेक्टिविटी परियोजनाओं को भी बढ़ावा मिल सकता है।
- आतंकवाद का मुकाबला: भारत और रूस साथ मिलकर अफगानिस्तान में अपनी पहुँच को बढ़ाने के लिये कार्य कर रहे हैं, साथ ही दोनों देशों ने 'अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद पर व्यापक अभिसमय' (Comprehensive Convention on International Terrorism- CCIT) को शीघ्र ही अंतिम रूप दिये जाने की मांग की है।
- बहुपक्षीय मंचों पर समर्थन: इसके अतिरिक्त रूस संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद (UNSC) और परमाणु आपूर्तिकर्त्ता समूह (NSG) की स्थायी सदस्यता के लिये भारत की उम्मीदवारी का समर्थन करता है।

रूस के लिये भारत का महत्त्व:

- चीन के प्रभुत्त्व के खिलाफ संतुलन: रूस और चीन की साझेदारी वर्तमान में एक अर्द्ध-गठबंधन के रूप में है। हालाँकि रूस बार-बार यह दोहराता रहा है कि वह स्वयं को किसी के जूनियर पार्टनर के रूप में नहीं देखता है। यही कारण है कि रूस चाहता है कि भारत इस क्षेत्र में चीन के प्रभुत्त्व के बावजूद शक्ति संतुलन बनाए रखने में अपनी भूमिका निभाए।
  - उदाहरण के लिये रूस के सुदूर पूर्व का विशाल भू-भाग संसाधनों से समृद्ध है, परंतु यहाँ की आबादी बहुत कम है और यह क्षेत्र शेष रूस की तुलना में अविकसित है।
  - अब तक इस क्षेत्र के विकास में मुख्य रूप से चीन की ही भूमिका रही है और इसलिये चीन पर बढ़ती अपनी निर्भरता को कम करने के लिये रूस, भारत की सहायता के माध्यम से इसमें विविधता लाना चाहता है।

- यूरेशियन आर्थिक संघ को पुनर्जीवित करना: रूस यूरेशियन इकोनॉमिक यूनियन की सफलता में वैधता हासिल करने के लिये भारत की नरम शक्ति का लाभ उठाने के साथ शीत युद्ध के समय की तरह ही इस क्षेत्र पर अपने आधिपत्य को फिर से स्थापित करने का प्रयास करा रहा है।

प्रमुख चुनौतियाँ:

- पश्चिमी देशों के साथ भारत की बढ़ती निकटता: चीन की विस्तारवादी विदेश नीति ने भारत को पूर्व के संकोचों को दूर करने और पश्चिमी देशों, विशेष रूप से अमेरिका के साथ अपने घनिष्ठ संबंधों को सक्रिय करने के लिये विवश किया है।
  - यह क्वाड प्रक्रिया को पुन: सुनियोजित रूप से शुरू किये जाने और एक स्वतंत्र तथा समावेशी हिंद-प्रशांत की घोषणा में भारत की भूमिका से प्रतिबिंबित होता है।
- पूर्व की तरफ रूस का झुकाव: वर्ष 2014 में क्रीमिया पर रूस के कब्ज़े के बाद पश्चिमी देशों ने रूस पर कठोर आर्थिक प्रतिबंध लगा दिये।
  - उसे अलग करने के इन प्रयासों के जवाब में रूस ने अपनी 'पिविट टू द ईस्ट' (Pivot to the East) नीति को और अधिक मज़बूती के साथ सामने रखा।
  - रूस के रूख में इस बदलाव का सबसे स्पष्ट परिणाम चीन के साथ इसके संबंधों में सुधार और तुर्की, ईरान तथा पाकिस्तान के साथ इसके बेहतर होते संबंधों के रूप में देखा जा सकता है।
  - रूस की 'पिविट टू द ईस्ट' (Pivot to the East) नीति अमेरिका के साथ तालमेल नहीं रखती और यह स्थिति भारत तथा रूस के संबंधों को भी प्रभावित करती है।

आगे की राह:

- हिंद-प्रशांत क्षेत्र में रूस की भागीदारी: भारत को हिंद-प्रशांत क्षेत्र में रूस की भागीदारी को बढ़ावा देने के सक्रिय प्रयासों के साथ इसके लिये उपयुक्त सहायता भी उपलब्ध करानी चाहिये। हालाँकि हिंद-प्रशांत में रूस की भूमिका इस बात पर निर्भर करेगी कि वह अपने आर्थिक विकास में बाधा बन रही मूलभूत समस्याओं से निपटने में कितना सफल रहता है।
  - इस क्षेत्र में रूस की सक्रिय भागीदारी हिंद-प्रशांत क्षेत्र को वास्तव में "स्वतंत्र और समावेशी" बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान देगी।
- भारतीय विदेश नीति में आरआईसी (RIC) को प्राथमिकता देना: भारत को रूस, भारत और चीन (RIC) के बीच पारस्परिक रूप से लाभप्रद त्रिपक्षीय सहयोग को बढ़ावा देना चाहिये जो भारत तथा चीन के बीच अविश्वास एवं संदेह को कम करने में सहायक हो सकता है।
- बहुपक्षीय मंचों पर सहयोग: भारत और रूस अभी भी अपने संबंधों के लिये एक सामान्य रणनीतिक उद्देश्य साझा करते हैं।
  - द्विपक्षीय संबंधों के अलावा दोनों ब्रिक्स (BRICS), आईआईसी (RIC), G20, पूर्वी एशिया शिखर सम्मेलन (East Asia Summit) और शंघाई सहयोग संगठन (SCO) सहित विभिन्न बहुपक्षीय संगठनों के सदस्य हैं, जहाँ आपसी महत्त्व के मुद्दों पर सहयोग के विकल्प उपलब्ध हैं।

निष्कर्ष:

- यह स्पष्ट है कि भारत और रूस अभी भी एक-दूसरे को महत्त्वपूर्ण साझेदार मानते हैं। दोनों देशों की यह मैत्री गहरे आपसी विश्वास पर बनी है, परंतु वर्तमान में उनकी विदेश नीति के लक्ष्य उन्हें अलग-अलग दिशाओं में ले जा रहे हैं।
- हालाँकि न तो भारत और न ही रूस चीन या संयुक्त राज्य अमेरिका का एक कनिष्ठ/जूनियर साझेदार बनना चाहता है। अत: दोनों ही देश पुन: शीत युद्ध काल के समान ही द्विपक्षीय संबंधों को मज़बूत करने के लिये कार्य कर सकते हैं।

भारत-चीन सैन्य वापसी समझौता

संदर्भ:

हाल ही में भारत और चीन पैंगोंग त्सो झील के निकट हालिया तनाव के दौरान तैनात की गई अपनी-अपनी सेनाओं को वापस बुलाने के लिये सहमत हो गए हैं। दोनों पक्षों ने सीमा बलों, बख़्तरबंद सैन्य संसाधनों की वापसी के लिये सहमति के साथ इस क्षेत्र में एक बफर ज़ोन के निर्माण का प्रस्ताव रखा है जो विवादित झील में गश्त पर अस्थायी रोक लगाएगा। चीन ने भारत से कैलाश पर्वतमाला में अपने कब्ज़े वाली ऊँचाई पर स्थित क्षेत्रों को खाली करने की मांग की है।

नोट :

सैनिकों की वापसी की यह प्रक्रिया सीमावर्ती क्षेत्रों में शांति बहाली की दिशा में एक सकारात्मक शुरुआत है। हालाँकि इस क्षेत्र में स्थायी शांति स्थापित करने के लिये कई अन्य महत्त्वपूर्ण मुद्दों को हल करने की आवश्यकता है।

सैन्य वापसी संबंधी मुद्दे:

- आंशिक सैन्य वापसी: वर्तमान सैन्य वापसी लद्दाख में वास्तविक नियंत्रण रेखा (LAC) पर दो स्थानों (पैंगोंग झील का उत्तरी तट और पैंगोंग के दक्षिण में कैलाश पर्वतमाला) तक ही सीमित है।
  - हालाँकि लद्दाख सीमा पर तीन अन्य विवादित स्थल (डेपसांग, गोगरा-हॉट स्प्रिंग्स और डेमचोक) हैं जहाँ चीनी सेना ने नियंत्रण रेखा का उल्लंघन किया था। वर्तमान चरण की सैन्य वापसी के पूरा होने के बाद इन तीन स्थानों के मुद्दे को हल करने के लिये बातचीत की जाएगी।
- डेपसांग मैदान का अनसुलझा मुद्दा: दरसुब-श्योक-दौलत बेग ओल्डी रोड, डीबीओ हवाई पट्टी और काराकोरम दर्रे से निकटता के कारण डेपसांग का मैदान चीन के साथ तनाव के संदर्भ में भारत के लिये रणनीतिक महत्त्व रखता है।
  - इसके अतिरिक्त दौलत बेग ओल्डी रोड सियाचिन ग्लेशियर पर भारत के नियंत्रण के लिये भी महत्त्वपूर्ण है।
  - सियाचिन ग्लेशियर भारतीय भू-भाग पर एकमात्र क्षेत्र है जहाँ चीन और पाकिस्तान भारत के खिलाफ सैन्य गठजोड़ कर सकते हैं।
  - ऐसे में डेपसांग पठार की वर्तमान स्थिति गंभीर चिंता का विषय है, जहाँ चीन ने सामरिक बढ़त प्राप्त कर ली है और वह दौलत बेग ओल्डी (डीबीओ) तथा उस क्षेत्र में हवाई संसाधनों तक भारत की पहुँच को प्रभावित कर सकता है।
- बफर ज़ोन के निर्माण से जुड़े मुद्दे: ऐसी आशंकाएँ हैं कि प्रस्तावित बफर ज़ोन का अधिकांश हिस्सा LAC पर भारतीय सीमा की तरफ होगा, जो वर्तमान में भारत के नियंत्रण वाले क्षेत्र को एक तटस्थ क्षेत्र में परिवर्तित कर देगा।
  - यह बफर ज़ोन सबसे सफल स्थिति में भी द्विपक्षीय तनाव पर एक अस्थायी विराम ही प्रदान कर सकता है परंतु यह दोनों पक्षों के आपसी सहमति में LAC के निर्धारण और भारत-चीन सीमा के अंतिम समाधान का विकल्प नहीं होगा।
  - इसके अतिरिक्त पैंगोंग झील के उत्तरी तट से सैनिकों को वापस बुलाने के बदले चीन, भारत से कैलाश पर्वतमाला में कब्ज़े में ली गई महत्त्वपूर्ण पहाड़ियों से हटने की मांग कर रहा है।
  - अत: यह लद्दाख में चीन के खिलाफ भारत की एकमात्र बढ़त को खोने के विचार पर प्रश्न खड़ा करता है।
- भारत और चीन के बीच अविश्वास: पिछले वर्ष की घटनाओं ने भारत और चीन के बीच अविश्वास पैदा किया है, जो अभी भी एक बड़ी बाधा बना हुआ है। इसके अतिरिक्त चीन की कार्रवाई हमेशा उसकी प्रतिबद्धताओं से मेल नहीं खाती है।
  - चीन, संयुक्त राज्य अमेरिका और क्वाड (QUAD)के साथ भारत की बढ़ती निकटता को लेकर भी सतर्क है।
  - भारत और चीन की विवादित सीमा तथा दोनों पक्षों के बीच बढ़ते अविश्वास के बीच 'नो पेट्रोल ज़ोन' के किसी भी उल्लंघन के घातक परिणाम (वर्ष 2020 में गालवान घाटी की तरह) हो सकते हैं।

आगे की राह:

- डेपसांग मुद्दे को वर्तमान वार्ताओं में शामिल करना: चीन का यह कहना कि डेपसांग समस्या LAC पर मौजूदा संकट से पहले का मुद्दा है और इसलिये इसे अलग से सुलझाया जाना चाहिये, यह तर्क भारत के हित में नहीं है।
  - अत: भारत को इन दोनों मुद्दों को एक साथ जोड़कर एक समग्र समाधान खोजने पर विशेष ज़ोर देना चाहिये।
- प्रतिक्रियात्मक कार्रवाई का विस्तार: भारत को अपनी प्रतिक्रिया को सीमा विवाद के प्रबंधन तक ही सीमित नहीं रखना चाहिये बल्कि इसे अपने देश में चीनी वाणिज्यिक हितों पर हमला करने हेतु अपनी प्रतिक्रिया का विस्तार करने के अलावा क्वाड भागीदारों के साथ समन्वय (विशेष रूप से समुद्री डोमेन में) बढ़ाना चाहिये।
- ताइवान कार्ड का उपयोग: विदेश नीति के मोर्चे पर भारत को चीन का मुकाबला करने के लिये राजनयिक और सैन्यवादी मार्ग तलाशने चाहिये। क्वाड देशों के साथ समन्वय स्थापित करने के अलावा ताइवान के साथ औपचारिक राजनयिक संबंध स्थापित करना इसका एक व्यवहार्य विकल्प हो सकता है।

- सैन्य सुधार: भारत को लद्दाख संकट को काफी समय से लंबित रक्षा सुधारों को पूरा करने के अवसर के रूप में देखना चाहिये।
  - ऐसा ही एक बहुत ही आवश्यक सुधार सेना के आंतरिक संगठन से जुड़ा हुआ है। उदाहरण के लिये भारतीय सेना का पेंशन बिल एक बड़ी चिंता का विषय रहा है।
  - पेंशन व्यय में इस वृद्धि का सेना की संसाधन क्षमता और आधुनिकीकरण पर व्यापक 'क्राउडिंग आउट' प्रभाव पड़ता है, गौरतलब है कि ये दो प्रमुख घटक देश के युद्ध-लड़ने की क्षमता को निर्धारित करते हैं।
  - इस चुनौती से निपटने के लिये वर्तमान में सरकार द्वारा एक दोहरी रणनीति अपनाई जा रही है जिसके तहत युवाओं को आकर्षित करने के लिये तीन वर्षीय 'टूर ऑफ ड्यूटी' कार्यक्रम को बढ़ावा और पेंशन योग्य सैनिकों को सेना छोड़ने से रोकने का प्रयास शामिल है।

निष्कर्ष:

वास्तविक नियंत्रण रेखा पर वर्तमान में भारत और चीन के सैनिकों को पीछे ले जाने की प्रक्रिया एक स्वागत योग्य कदम है क्योंकि दो परमाणु संपन्न एशियाई शक्तियों के बीच तनाव किसी के हित में नहीं है। हालाँकि सैन्य वापसी की इस योजना की सफलता अंतत: इस बात पर निर्भर करेगी कि इसे ज़मीनी स्तर पर पूर्ण रूप से लागू किया जाता है या नहीं।

इज़राइल-फिलिस्तीन संघर्ष और टू स्टेट सॉल्यूशन

संदर्भ:

हाल ही में अंतर्राष्ट्रीय आपराधिक न्यायालय (International Criminal Court-ICC) ने इज़राइल-फिलिस्तीन संघर्ष से संबंधित मुद्दों पर अपने प्रादेशिक क्षेत्राधिकार के दायरे के संदर्भ में एक निर्णय जारी किया। इसके तहत ICC ने इज़राइल-फिलिस्तीन विवाद के दौरान होने वाले मानवाधिकार उल्लंघन की जाँच करने पर सहमति व्यक्त की है।

फिलिस्तीनी अधिकारियों ने ICC के इस फैसले का स्वागत किया है। दूसरी ओर, इज़राइल ने ICC की कार्रवाई को एक गैर-कानूनी हस्तक्षेप बताते हुए इसकी आलोचना की है और कहा कि यह कार्रवाई उसकी संप्रभुता का उल्लंघन करती है। साथ ही इज़राइल ने धमकी दी है कि यह कदम अंतत: इज़राइल और फिलिस्तीन के बीच दो-राज्य समाधान या 'टू स्टेट सॉल्यूशन' (Two-State Solution) की संभावनाओं को समाप्त कर सकता है।

वर्तमान में इज़राइल-फिलिस्तीन तनाव अपेक्षाकृत कम तीव्रता वाले संघर्ष के रूप में बना हुआ है, हालाँकि कई बार कुछ अंतराल के बाद इस क्षेत्र की हिंसा में वृद्धि भी देखने को मिलती है। इसके साथ ही इस क्षेत्र में राजनीतिक विचारों का लगातार क्षरण देखने को मिलता है। यह खतरनाक यथास्थिति क्षेत्र की स्थायी शांति को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित कर सकती है और इस क्षेत्र को एक बार पुन: अस्थिरता की ओर धकेल सकती है।

क्या है टू स्टेट सॉल्यूशन?

- टू स्टेट सॉल्यूशन दशकों से चल रहे इज़राइल-फिलिस्तीन संघर्ष में शांति बहाल करने के प्रयासों का प्राथमिक केंद्र रहा है।
- इस समाधान के तहत इज़राइल के साथ एक स्वतंत्र फिलिस्तीनी राज्य (देश) की स्थापना की अवधारणा प्रस्तुत की गई - अर्थात् दो अलग समुदायों के लोगों के लिये दो अलग राज्य।
- सैद्धांतिक रूप से यह इज़राइल की सुरक्षा चुनौतियों का समाधान करने के साथ ही उसे एक यहूदी बाहुल्य आबादी बनाए रखने की अनुमति देता है और फिलिस्तीनियों के लिये अलग देश की व्यवस्था का प्रावधान करता है।
- वर्ष 1947 की संयुक्त राष्ट्र विभाजन योजना (Partition Plan) इज़राइल और फिलिस्तीन के बीच दशकों तक सैन्य कार्रवाई और हिंसा का कारण बनी। वर्ष 1991 में अमेरिका की मध्यस्थता के बाद मैड्रिड शांति सम्मेलन में इज़राइल-फिलिस्तीन संघर्ष को हल करने के लिये टू स्टेट सॉल्यूशन पर सहमति बनी।
- संयुक्त राष्ट्र के अनुसार, एक 'टू स्टेट सॉल्यूशन', जहाँ फिलिस्तीन और इज़राइल की वैध राष्ट्रीय आकांक्षाओं को स्वीकार करता है, वहीं इस क्षेत्र में स्थायी शांति का आधार बन सकता है।

टू स्टेट सॉल्यूशन से जुड़े जोखिम:

- ईरान का पहलू: इज़राइल की उत्तरी सीमा पर अभी भी तनाव और जोखिम की स्थिति बनी हुई है, विशेष रूप से ईरानी और हिजबुल्ला के लक्ष्यों (फिलिस्तीन से जुड़े) के खिलाफ सीरिया में इज़राइल के हमलों तथा हाल ही में यू.एस. द्वारा ईरानी कमांडर कासिम सुलेमानी की हत्या के बाद यह क्षेत्र और भी संवेदनशील हो गया है।
- क्षेत्रीय शीत युद्ध: मध्य-पूर्व क्षेत्र वर्तमान में ईरान और सऊदी अरब के बीच एक क्षेत्रीय शीत युद्ध का सामना कर रहा है। इसके कारण इस क्षेत्र में कई छोटे परंतु घातक सैन्य समूहों का उदय हुआ है।
    - उदाहरण के लिये यमन में सक्रिय हूती लड़ाके, ये समूह अधिक क्षमता हासिल कर इस क्षेत्र में गंभीर अस्थिरता की स्थिति पैदा कर सकते हैं।
    - ये सभी कारक अस्थिरता और एकल या एक से अधिक मोर्चों पर युद्ध की संभावना को बढ़ाते हैं।
- तीसरा इंतिफादा: अंततः ये स्थितियाँ एक तीसरे इंतिफादा का कारण बन सकती हैं और वर्तमान में सक्रिय शांतिपूर्ण प्रतिरोध चरम हिंसा तथा मानव अधिकारों के उल्लंघन में बदल सकता है।
- फिलिस्तीन में विभाजित राजनीतिक नेतृत्व: वर्तमान में फिलिस्तीनी राजनीतिक नेतृत्त्व मंर समन्वय का व्यापक अभाव है, गौरतलब है कि जहाँ वेस्ट बैंक (West Bank) में फिलिस्तीनी राष्ट्रवादियों द्वारा 'टू स्टेट सॉल्यूशन' का समर्थन किया जाता है, वहीं गाज़ा का राजनीतिक नेतृत्व इज़राइल को मान्यता नहीं देता है।

इंतिफादा (Intifada):

- इंतिफादा वेस्ट बैंक और गाज़ा पट्टी में हुए फिलिस्तीनियों के दो प्रसिद्ध विद्रोह हैं जिनका उद्देश्य उन क्षेत्रों पर इज़राइल के कब्ज़े को समाप्त करना और एक स्वतंत्र फिलिस्तीनी राज्य की स्थापना करना था।
- पहला इंतिफादा दिसंबर 1987 में शुरू हुआ और सितंबर 1993 में पहले ओस्लो समझौते पर हस्ताक्षर के साथ समाप्त हुआ, इस समझौते ने इज़राइल और फिलिस्तीनियों के बीच शांति वार्ता की एक रूपरेखा प्रदान की।
- दूसरा इंतिफादा (जिसे अल-अक्सा इंतिफादा भी कहा जाता है) सितंबर 2000 में शुरू हुआ था।
- इन दोनों विद्रोहों में लगभग 5,000 से अधिक फिलिस्तीनी और लगभग 1,400 इज़राइली मारे गए।

आगे की राह:

- भारत की भूमिका: ऐतिहासिक रूप से भारत ने टू स्टेट सॉल्यूशन के लक्ष्य को आगे बढ़ाने के लिये दोनों पक्षों के नेतृत्व से सीधी वार्ताओं में शामिल होने का आग्रह किया है।
    - फिलिस्तीन में भारतीय प्रयास फिलिस्तीनी अर्थव्यवस्था के विभिन्न क्षेत्रों को कवर करने वाले भारत-फिलिस्तीन विकास साझेदारी के माध्यम से राष्ट्र-निर्माण और संस्थानों को सुदृढ़ करने पर केंद्रित रहे हैं।
    - इज़राइल के साथ भारत रक्षा, विज्ञान और तकनीक आदि के क्षेत्रों में एक विशेष संबंध साझा करता है।
    - इस संदर्भ में भारत इन दोनों देशों को स्थायी शांति की दिशा में आगे बढ़ने के लिये प्रेरित करने हेतु अपनी नरम शक्ति का लाभ उठा सकता है।
- अब्राहम एकार्ड, एक सकारात्मक कदम: इज़राइल और यूएई, बहरीन, सूडान और मोरक्को के बीच संबंधों को सामान्य बनाने के लिये हुआ हालिया समझौता, जिसे अब्राहम एकार्ड (Abraham Accord) के रूप में जाना जाता है, भी इस बात का प्रमाण है कि प्रत्यक्ष वार्ता ही इस क्षेत्र में शांति प्राप्त करने का एकमात्र उपयुक्त विकल्प है।
    - अतः सभी क्षेत्रीय शक्तियों को अब्राहम एकार्ड की तर्ज पर दोनों पक्षों के बीच शांति स्थापना के लिये प्रयास करना चाहिये।

निष्कर्ष:

वर्तमान में इज़राइल-फिलिस्तीन विवाद के शांतिपूर्ण समाधान के लिये विश्व के सभी देशों को एक साथ आने की आवश्यकता है, परंतु इज़राइल सरकार तथा इस मामले से जुड़े अन्य हितधारकों की अनिच्छा ने इस मुद्दे को और अधिक बिगाड़ दिया है। ऐसे में इज़राइल-फिलिस्तीन मुद्दे के प्रति एक संतुलित दृष्टिकोण भारत के लिये अरब देशों और इज़राइल के साथ अनुकूल संबंध बनाए रखने में सहायक होगा।

पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण

प्रकृति आधारित समाधान

संदर्भ:

पेरिस समझौते (Paris Agreement) को अपनाए जाने के पाँच वर्ष पूरे होने के बाद इसमें शामिल हस्ताक्षरकर्त्ता देश इस वर्ष के अंत में आयोजित होने वाले COP26 की पृष्ठभूमि में एक बार पुन अपने राष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित योगदान (Nationally Determined Contribution) का पुनरीक्षण कर रहे हैं।

इसके अतिरिक्त वर्ष 2021 में 'पारिस्थितिकी तंत्र पुनर्बहाली पर संयुक्त राष्ट्र दशक' (The United Nations Decade on Ecosystem Restoration) की शुरुआत के साथ COP26 में जलवायु परिवर्तन अनुकूलन रणनीति के लिये प्रकृति-आधारित समाधानों (Nature-Based Solutions or NbS) पर अधिक व्यापक चर्चा की परिकल्पना की गई है।

इस संदर्भ में प्रकृति-आधारित समाधान (NbS) की अवधारणा जलवायु लचीलेपन के निर्माण और संसाधन प्रबंधन में सहायक हो सकती है।

प्रकृति-आधारित समाधान क्या है?

- प्रकृति आधारित समाधान (NbS) से आशय सामाजिक-पर्यावरणीय चुनौतियों से निपटने के लिये प्रकृति के स्थायी प्रबंधन और उपयोग से है।
- अंतर्राष्ट्रीय प्रकृति संरक्षण संघ (IUCN) द्वारा NbS को प्राकृतिक और संशोधित पारिस्थितिक तंत्रों की रक्षा, स्थायी प्रबंधन और पुनर्स्थापना करने के कार्य के रूप में परिभाषित किया गया है जो सामाजिक चुनौतियों को प्रभावी और अनुकूल ढंग से संबोधित करने के साथ मानव कल्याण एवं जैव विविधता से जुड़े लाभ प्रदान करते हैं।
- यह अन्य क्षेत्र-विशिष्ट घटकों जैसे कि ग्रीन इन्फ्रास्ट्रक्चर, प्राकृतिक अवसंरचना, पारिस्थितिक इंजीनियरिंग, पारिस्थितिक तंत्र-आधारित शमन एवं अनुकूलन और पारिस्थितिकी-आधारित आपदा जोखिम में कमी से जुड़ा हुआ है।
- NbS लोगों और प्रकृति के बीच सामंजस्य स्थापित करने के साथ ही पारिस्थितिक विकास को सक्षम बनाता है तथा जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिये एक समग्र मानव केंद्रित प्रतिक्रिया का प्रतिनिधित्व करता है।
- साथ ही NbS जलवायु परिवर्तन पर पेरिस समझौते के लक्ष्यों को प्राप्त करने के समग्र वैश्विक प्रयास का एक महत्त्वपूर्ण घटक है।
  - पेरिस समझौते का अनुच्छेद 5.2 जलवायु परिवर्तन शमन और अनुकूलन रणनीतियों में प्राकृतिक संसाधनों के महत्त्व को स्वीकार करता है।
  - इसके अतिरिक्त अनुच्छेद 7 आर्थिक विविधीकरण और प्राकृतिक संसाधनों के स्थायी प्रबंधन के माध्यम से सामाजिक आर्थिक और पारिस्थितिक प्रणालियों के लचीलेपन के निर्माण के विचार को बढ़ावा देता है।

प्रकृति-आधारित समाधान का उदाहरण:

- स्थानीय लोगों की सहायता: NbS जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से निपटने, पारिस्थितिकी तंत्र सेवाओं में सुधार और कार्बन भंडारण में स्थानीय लोगों की सहायता करने में बड़े पैमाने पर सफल रहा है।
  - उदाहरण के लिये 'लेक डिस्ट्रिक्ट नेशनल पार्क' (यूनाइटेड किंगडम) में शुरू की गई पुनर्स्थापना परियोजना से न केवल स्थानीय जैव विविधता में सुधार करने में सफलता प्राप्त हुई बल्कि इससे पर्यटन के माध्यम से राजस्व अर्जन का रास्ता भी खुला।
- आपदा न्यूनीकरण के लिये NbS: समुद्र तटों पर मैंग्रोव की पुन:स्थापन या संरक्षण कई लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिये एक प्रकृति-आधारित समाधान का उपयोग करता है।
  - मैंग्रोव तटीय बस्तियों या शहरों पर लहरों और हवा के प्रभाव को कम करता है।

- वे समुद्री जीवन के लिये सुरक्षित नर्सरी भी प्रदान करते हैं जो मछली की आबादी को बनाए रखने का आधार हो सकता है और इस पर स्थानीय आबादी पर निर्भर करती है।
- इसके अतिरिक्त मैंग्रोव वन तटीय क्षरण को नियंत्रित करने में सहायता कर सकते हैं, गौरतलब है कि तटीय क्षरण समुद्र-स्तर की वृद्धि का एक प्रमुख कारक है।

- शहरी मुद्दों को संबोधित करना: पारिस्थितिक तंत्र को बहाल करने में NbS के उपयोग के अतिरिक्त मानव स्वास्थ्य और शहरी जैव विविधता को लाभ पहुँचाने हेतु शहरों में मानव निर्मित बुनियादी ढाँचे के संयोजन में भी इसका उपयोग किया जा सकता है।
    - इसी तरह शहरों में हरित छतें या दीवारें प्रकृति आधारित समाधान के रूप में कार्य कर सकती हैं जिनका उपयोग उच्च तापमान के प्रभाव को कम करने, वर्षाजल को एकत्र करने, प्रदूषण को कम करने और जैव विविधता को बढ़ाते हुए कार्बन सिंक के रूप में किया जा सकता है।
    - पानी की कमी का सामना कर रहे क्षेत्रों में भूजल को पुन: भरने में सहायता करने के लिये पारगम्य कंक्रीट क्षेत्रों का निर्माण एक प्रभावी विकल्प होगा।
    - बड़े होटल और रिज़ार्ट पानी के पुनर्चक्रण के लिये कृत्रिम आर्द्रभूमि जैसे समाधानों को प्रभावी ढंग से आगे बढ़ा सकते हैं, जो स्थानीय परिदृश्य के सौंदर्य में वृद्धि करेगा।

प्रकृति आधारित समाधान की आवश्यकता:

जलवायु परिवर्तन आज मानव जाति के समक्ष उपस्थित सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है। जलवायु परिवर्तन के प्रभावों से शहरों और प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्रों को सबसे अधिक नुकसान होगा।

- शहरों की बढ़ती सुभेद्यता: विशेष रूप से भूमि-उपयोग परिवर्तन की अतिरिक्त जटिलताओं, जनसंख्या के घनत्व में वृद्धि, कंक्रीट क्षेत्रफल का विस्तार, सामाजिक असमानता, खराब वायु गुणवत्ता और कई अन्य संबद्ध मुद्दों के कारण शहरों की सुभेद्यता में वृद्धि हुई है।
    - यह मानव स्वास्थ्य, सामाजिक कल्याण और जीवन की गुणवत्ता के लिये एक गंभीर चुनौती (विशेष रूप से समाज के वंचित वर्गों के लिये) प्रस्तुत करता है।
- प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र के लिये जोखिम: जैव विविधता और जल संसाधनों में गिरावट के रूप में प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र का व्यापक क्षरण देखा जा सकता था।
    - जलवायु परिवर्तन के प्रभावों को दूर या कम करने के लिये स्थानीय नेतृत्व वाले अनुकूलन के विचार पर व्यापक रूप से चर्चा की गई है, जो हमें NbS की ओर निर्देशित करता है।

लोकल लेड एडेप्टेशन (Local-led Adaptation):

- स्थानीय नेतृत्व चालित अनुकूलन या लोकल लेड एडेप्टेशन से आशय स्थानीय समुदायों और स्थानीय सरकारों द्वारा जलवायु परिवर्तन से निपटने के लिये प्रभावी निर्णय लेने के सशक्त प्रयासों से है।
- लोकल लेड एडेप्टेशन को अक्सर स्वदेशी समाधानों के आधार पर परिभाषित किया जाता है, जो प्राय: प्रकृति से जुड़े होते हैं।
- ध्यातव्य है सबसे सुभेद्य आबादी वह होती है जो प्राकृतिक संसाधनों पर अधिक निर्भर है, ऐसे में यह अपेक्षित है कि किसी समस्या का मुकाबला करने वाले समाधान भी अक्सर उसी स्रोत (समस्या से जुड़े) से उत्पन्न होते हैं।

प्रकृति आधारित समाधान के लिये चुनौतियाँ:

- अत्यधिक परिस्थिति-विशिष्ट: NbS अत्यधिक परिस्थिति-विशिष्ट होते हैं और बदलती जलवायु परिस्थितियों में उनकी प्रभावशीलता भी अनिश्चित होती है। प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र जलवायु परिवर्तन से प्रभावित होते हैं परंतु भविष्य के जलवायु परिदृश्यों में NbS की प्रभावशीलता संदिग्ध है।
- धन की आवश्यकता: NbS से जुड़ी अनिश्चितताओं के अलावा इसके लिये निवेश के निरंतर प्रवाह को बनाए रखना एक अतिरिक्त चुनौती है।
    - संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम (2020) की एक रिपोर्ट के अनुसार, वैश्विक स्तर पर NbS को लागू करने के लिये वर्ष 2030 तक सालाना 140 बिलियन अमेरिकी डॉलर से 300 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक के निवेश की आवश्यकता होगी, जो वर्ष 2050 तक बढ़कर 280 बिलियन अमेरिकी डॉलर से 500 बिलियन अमेरिकी डॉलर तक पहुँच सकता है।

प्रकृति आधारित समाधान को लागू करना:

IUCN द्वारा NbS को लागू करने के लिये कुछ मापदंड और संबद्ध संकेतकों के साथ एक वैश्विक मानक जारी किया गया, जिसमें सतत् विकास लक्ष्यों और लचीले परियोजना प्रबंधन को संबोधित किया गया है ।

कार्यान्वयन से पहले निर्णय लेने के लिये इन मानदंडों को समझने हेतु हम NbS का उपयोग करते हुए एक पहाड़ी क्षेत्र के जीर्णोद्धार का उदाहरण ले सकते हैं।

कोई एक पहाड़ी क्षेत्र जहाँ खनिज संसाधनों को प्राप्त करने के लिये अत्यधिक खनन किया जाता है, वह क्षेत्र खनन के परिणामस्वरुप मिट्टी के कटाव, भूस्खलन और बढ़े हुए जलवायु जोखिम के लिये अतिसंवेदनशील हो जाता है।

- ऐसे क्षेत्र का जीर्णोद्धार करना एक से अधिक सामाजिक चुनौतियों को संबोधित करेगा।
- जीर्णोद्धार कार्यक्रम के डिज़ाइन के पैमाने का अनुमान लगाया जाना चाहिये।
- इसके अलावा नियोजित पुनर्स्थापना/जीर्णोद्धार क्षेत्र की जैव विविधता में सुधार करेगा या नहीं और इसके आर्थिक रूप से व्यावहारिक होने की भी समीक्षा की जानी चाहिये।
- समावेशी शासन के लिये पौधों की प्रजातियों का रोपण स्थानीय हितधारकों के परामर्श से किया जाना चाहिये क्योंकि अंतत: वे ही पौधों की देख-रेख करेंगे।
- जब हम क्षेत्र की पुनर्स्थापना/जीर्णोद्धार कर रहे होते हैं, तो इससे क्षेत्र की जैव विविधता में सुधार हो सकता है, परंतु इसके परिणामस्वरूप बच्चों के खेल के मैदानों (या किसी अन्य प्रयोजन के लिये निर्धारित भूमि) का नुकसान भी हो सकता है।
- हालाँकि इस तरह के लेन-देन पर पहले ही विचार किया जाना चाहिये और इस पर पारस्परिक सहमति होने के साथ इसे पूरे समय बनाए रखा जाना चाहिये। सातवें मापदंड को पूरा करने के लिये बहाल क्षेत्र को बनाए रखने के साथ इसका अध्ययन किया जाना चाहिये और भविष्य के निर्णय लेने की प्रक्रिया को समर्थन प्रदान करने हेतु इसे प्रभावी रूप से प्रलेखित किया जाना चाहिये।
- वैश्विक NbS मानकों को समान वातावरण में व्यावहारिक समाधानों की प्रतिकृति के महत्त्व पर प्रकाश डालना चाहिये।

निष्कर्ष:

यदि हम स्थायी निवेश प्राप्त करने के साथ-साथ NbS से जुड़ी जटिलताओं को संबोधित करने में सफल रहते हैं, तो हम अपने प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा, संरक्षण और जीर्णोद्धार सुनिश्चित करने के अलावा जलवायु-अनुकूल (क्लाइमेट रिज़िलिएंट) भविष्य का निर्माण कर सकते हैं।

नोट :

सामाजिक न्याय

एम.जे. अकबर बनाम प्रिया रमानी मामला

हाल ही में दिल्ली उच्च न्यायालय ने एम.जे. अकबर बनाम प्रिया रमानी मामले में एक सशक्त निर्णय दिया, जो भारत के #मीटू (#MeToo) आंदोलन और महिला अधिकारों के संघर्ष में एक मील के पत्थर के रूप में कार्य कर सकता है।

दिल्ली उच्च न्यायालय ने पत्रकार प्रिया रमानी को पूर्व केंद्रीय मंत्री और संपादक एम. जे. अकबर द्वारा उनके खिलाफ दायर किये गए आपराधिक मानहानि मामले में बरी कर दिया।

यौन हिंसा के आरोप के मामलों में अधिकांशत: मज़बूत पृष्ठभूमि वाले वर्गों के पुरुष पीड़ित महिलाओं पर अपनी प्रतिष्ठा और ओहदे को चोट पहुँचाने का आरोप लगाते हैं। यह यौन उत्पीड़न के मामलों को कमज़ोर करने के साथ महिलाओं की आवाज़ को दबाता है और उन्हें बदनाम करता है।

इस संदर्भ में उच्च न्यायालय ने स्पष्ट किया कि प्रतिष्ठा के अधिकार की रक्षा एक महिला के जीवन और उसकी गरिमा की कीमत पर नहीं की जा सकती है। इसके अतिरिक्त न्यायालय ने अपने फैसले में कई अन्य महत्त्वपूर्ण बिंदुओं पर प्रकाश डाला जो समाज में पितृसत्तात्मक सत्ता से जुड़ी विषमता को दूर करने में सहायक हो सकते हैं।

निर्णय का महत्त्व:

यौन उत्पीड़न के खिलाफ आवाज़ उठाने वाली महिलाओं पर अक्सर विश्वास नहीं किया जाता है और उनसे सवाल पूछे जाते हैं जिनका उद्देश्य उन्हें चुप कराना तथा उनकी गरिमा को ठेस पहुँचाना होता है। उच्च न्यायालय का निर्णय इस प्रकार के सवालों का जवाब देने की कोशिश करता है।

- दुर्व्यवहार के बारे में तत्काल क्यों नहीं बताया गया? उच्च न्यायालय ने अपने फैसले में समाज से यह समझने का आग्रह किया कि "कभी-कभी पीड़ित व्यक्ति मानसिक आघात के कारण वर्षों तक घटना के बारे में खुलकर नहीं बोल पाता।" साथ ही न्यायालय ने यह भी रेखांकित किया कि महिलाओं को दशकों बाद भी अपने साथ हुए दुर्व्यवहार के बारे में बोलने का अधिकार है।
  - मामले की सुनवाई के दौरान दिल्ली उच्च न्यायालय ने बताया कि एक महिला का अपने साथ हुए दुर्व्यवहार के विरुद्ध बोलने का अधिकार समय बीतने के साथ सीमित नहीं होता।
- आपराधिक मामला दर्ज करने के बजाय मीडिया या सोशल मीडिया का सहारा क्यों लिया गया? न्यायालय ने अपने निर्णय में तर्क दिया कि संस्थागत तंत्र महिलाओं की सुरक्षा या न्याय प्रदान करने में प्रणालीगत रूप से विफल रहा है।
  - ऐसे में पीड़ितों द्वारा अपनी आत्म-रक्षा में मीडिया या सोशल मीडिया प्लेटफॉर्मों पर अपने बयान को साझा करना न्यायसंगत है।
- उपलब्ध साक्ष्य क्या है? इस निर्णय में कहा गया कि चूँकि यौन उत्पीड़न आमतौर पर निजी स्थलों पर होता है, इसलिये महिलाओं की गवाही को सिर्फ इसलिये असत्य या मानहानि के रूप में खारिज नहीं किया जा सकता है कि वे अपने आरोपों की पुष्टि करने के लिये अन्य गवाहों को प्रस्तुत करने में असमर्थ हैं।
- पुरुष की प्रतिष्ठा पर प्रश्न? जब भी कोई पेशेवर महिला शक्तिशाली पुरुषों के खिलाफ न्याय प्राप्त करने का प्रयास करती है, तो आमतौर पर आरोपी के खिलाफ काफी रोष देखने को मिलता है और ऐसे पुरुष की प्रतिष्ठा को चोट पहुँचती है।
  - प्रिया रमानी के फैसले में उच्च न्यायालय ने यह रेखंकित किया कि मानहानि की आपराधिक शिकायत के बहाने एक महिला को यौन शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाने के लिये दंडित नहीं किया जा सकता है क्योंकि संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत प्राप्त प्रतिष्ठा के अधिकार की रक्षा किसी दूसरे के जीवन और सम्मान/गरिमा की कीमत पर नहीं की जा सकती है।

निर्णय का प्रभाव:

रमानी फैसला #MeToo आंदोलन की एक बहुत बड़ी नैतिक जीत है और उम्मीद है कि यह पीड़ितों की आवाज़ दबाने के लिये शक्तिशाली पुरुषों को मानहानि कानून का दुरुपयोग करने से रोकेगा। हालाँकि कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न अकेले व्यक्ति तक सीमित होने के बजाय एक संस्थागत समस्या है।

- महिला उत्पीड़न: विश्व भर में नियोक्ताओं द्वारा महिला कर्मचारियों को नियंत्रित करने के लिये यौन उत्पीड़न एक प्रमुख माध्यम/हथियार रहा है। कई रिपोर्टों के अनुसार, भारत और बांग्लादेश में कपड़ा कारखानों में काम करने वाले कम-से-कम 60% श्रमिक कार्यस्थल पर उत्पीड़न का सामना करते हैं।
  - भारत में इस प्रकार के भेदभाव तथा पुरुषों को पहले से ही प्राप्त दंडमुक्ति पर प्रश्न उठाना अधिक कठिन है। मनोरंजन उद्योग में महिलाओं को ऐसे दुर्व्यवहार के विरूद्ध आवाज़ उठाने के लिये विरोध का सामना करना पड़ता है, जबकि कई मामलों में गंभीर अपराधों के आरोप के बावजूद पुरुषों को उनके पद पर पुन: बहाल कर दिया गया है।
- कमज़ोर वर्गों के लिये चुनौती: घरेलू श्रमिकों, कारखाना श्रमिकों, स्ट्रीट वेंडर्स, स्वच्छता और अपशिष्ट श्रमिकों, निर्माण श्रमिकों आदि के लिये श्रम कानून या यौन उत्पीड़न के खिलाफ बने कानून केवल कागज़ों तक ही सीमित हैं।
  - ऐसे में अपने मालिक के विरुद्ध आवाज़ उठाने का अर्थ है कि तत्काल नौकरी और वेतन का नुकसान।
- यूनियन बनाने में नई कठिनाई: नई श्रम संहिता के तहत सरकार द्वारा ईज़ ऑफ डूइंग बिज़नेस में सुधार करने की परिकल्पना की गई है। इस संदर्भ में नई श्रम संहिता अब श्रमिकों को यूनियन बनाने के लिये हतोत्साहित करती है।
  - ऐसे में यौन उत्पीड़न से लड़ने वाली ऐसी महिला कार्यकर्त्ता जिनका संघर्ष इन संहिताओं से प्रभावित होता है, को अधिक समर्थन और उनके प्रति ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष:

रमानी फैसला #MeToo आंदोलन की एक बहुत बड़ी नैतिक जीत है और उम्मीद है कि यह पीड़ितों की आवाज़ दबाने के लिये शक्तिशाली पुरुषों को मानहानि कानून का दुरुपयोग करने से रोकेगा। हालाँकि कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न एक सामाजिक समस्या है जिसकी जड़ें समाज की पितृसत्तात्मक मानसिकता से जुड़ी हुई हैं।

ऐसे में इस तरह के न्यायिक फैसलों के अलावा समाज को एक सांस्कृतिक क्रांति की आवश्यकता है ताकि महिलाओं के साथ समानता, निष्पक्षता और सम्मान के साथ व्यवहार किया जा सके।

The Vision